रुपए की कहानी

लेखक
घनश्यामदास बिड़ला
पारसनाथ सिंह

१९४६
सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली।

दूसरी बार १९४६
मूल्य
तीन रुपए

मुद्रक
अमरचन्द्र
राजहंस प्रेस, दिल्ली।

समर्पण

कोई तीन साल की बात है, गांधीजी ने मुझसे कहा, 'हिन्दी में हुंडी और चलण पर एक ऐसी सरल पुस्तक लिखो जो हर कोई आसानी से समझ सके।' उसी आज्ञा का फल यह पुस्तक है।

सारी कहानी दो हिस्सों में सुनाई गई है। जब लिखना शुरू किया था तब तो सोचा था कि पूर्व भाग मीमांसा का होगा और उत्तर भाग रुपए की हुंडी का इतिहास होगा, और सारा-का-सारा स्वयं मैं ही लिखूंगा। पर मीमांसा भाग समाप्त करते-करते जब इतिहास भाग के लिए मसाला इकट्ठा करने लगा तब स्मरण आया कि "फेडरेशन आफ इंडियन चेम्बर्स आफ कामर्स एण्ड इंडस्ट्री" के तत्वावधान में श्री पारसनाथजी ने कुछ साल पहले रुपये की हुण्डी का एक अच्छा इतिहास अंग्रेजी में लिखा था। इसलिए उपयुक्त यही लगा कि मैं श्री पारसनाथजी से कहूं कि इस ग्रंथ का इतिहास भाग भी वही लिख दें और उसमें यथासम्भव आज तक की बातों का समावेश कर दें।

इस तरह मीमांसा भाग मैंने लिखा और इतिहास भाग श्री पारसनाथजी ने।

जिनकी आज्ञा से यह सब कुछ हुआ वे तो फाटक के भीतर बन्द हैं, इसलिए छपने के पहले इसे गांधीजी को दिखा देना असम्भव था। उन्हें बिना दिखाए ही यह छापाखाने में आ रहा है।

गांधीजी की आज्ञा थी कि इस जटिल विषय को सरल भाषा में लिखा जाय। हम दोनों ने कोशिश तो यही की है, पर कहां तक सफलता मिली है यह तो पाठक ही बता सकेंगे।

जिनकी आज्ञा से यह पुस्तक लिखी गई उन्हीं महापुरुष के चरणों में यह समर्पित की जाती है।

मकर संक्रान्ति, सं० २००० घनश्यामदास बिड़ला

विषय-सूची

पूर्व भाग : मीमांसा

उत्तर भाग : इतिहास

(पूर्व भाग)

मीमांसा

रुपए की कहानी

१

इस पुस्तक के नाम को सुन कर शायद किसी को यह खयाल हो कि यह चांदी के सिक्के की कथा है जिसमें यह बताया गया है कि चांदी पहले खानों में से कैसे निकली, फिर कैसे गलाई गई, कैसे इसके पासे बने, फिर टकसाल में कैसे रुपए ढाले गए इत्यादि। बच्चों की बालबोधिनी में अकसर ऐसी कथाएं आती हैं। पर यह इस पुस्तक का विषय नहीं है। इस पुस्तक का सम्बन्ध है रुपए की करामात से।

इसे सुन कर भी शायद कोई हंस पड़े। कौन है नावाकिफ रुपए की करामात से कि उसकी भी कहानी लिखी जाय? ऐसा कोई कह तो सकता है। पर यह कथन अज्ञान का द्योतक होगा। रुपए की बाहरी ताकत से लोग चाहे अनभिज्ञ न हों पर रुपए के पीछे कौन-सी शक्ति है जिसने इसे ताकत दी, इस बारे में आम जनता का ज्ञान बिलकुल अधूरा है।

उदाहरणार्थ आम लोग तो यही मानते हैं कि रुपए की कीमत स्थिर है। जिन्सों की दर घटे बढ़े, पर रुपए की दर तो सुमेरु की तरह अचल है। यह कथन उतना ही सत्य है जितना कि यह कहना कि 'पृथ्वी अचल है। पृथ्वी नहीं, सूर्य, चांद और तारे ही घूमते हैं। यदि पृथ्वी घूमती तो रात के समय हमारे पांव ऊपर की ओर और सर नीचे की ओर होता।" कोई नादान ही ऐसी नादानी की बात कह सकता है। पर जैसे पृथ्वी घूमती है वैसे ही रुपए की कीमत भी घटती और बढ़ती है।

सन १९२६-२७ में बड़े जोर से एक आन्दोलन हुआ था कि रुपए की दर १ शिलिंग ६ पेंस निर्धारित न होकर १ शिलिंग ४ पेंस निर्धारित हो। रुपए की दर के सम्बन्ध में इसी तरह का एक आन्दोलन सन १९१९ में भी बड़े जोर शोर के साथ चला था। उस वक्त सरकार ने रुपए की दर

२ शिलिंग निर्धारित की थी। प्रजा पक्ष के लोगों का कहना था कि यह दर ऊंची है, १ शिलिंग ४ पेंस से ऊंची दर हर्गिज निर्धारित नहीं होनी चाहिए, इसमें ऊंची दर टिक नहीं सकेगी और ऊँची दर टिकाने की कोशिश से देश को हानि है। हुआ भी अंत में ऐसा ही, पर करोड़ों रुपए खो देने के बाद। इसके पहले भी एक आन्दोलन १८९३ और फिर १८९८ के करीब इसी तरह दर के सम्बन्ध में चला था।

यह रुपए की दर का झगड़ा क्या था? रुपए की दर आखिर है क्या? कम इसकी निर्धारित दर को टिकाया जाता है? घटा बढ़ी दर में क्योंकर होती है? घटा बढ़ी से हानि लाभ क्या है? क्या कोई घटा बढ़ी के लिए जिम्मेदार है? कौन इसकी व्यवस्था करता है? समाज में सिक्के का स्थान क्या है, और प्राचीन सिक्का प्रथा और अब की सिक्का प्रथा में क्या भेद है?

इन प्रश्नों के झमेले में शायद कोई पड़ता ही नहीं। इस प्रश्न को जो समझना चाहते भी हैं वे यह मान कर सन्तोष करते हैं कि यह प्रश्न अर्थ शास्त्री ही समझ सकते हैं, यह चीज सर्वसाधारण के बूते के बाहर की है। फिर भी यह सही है कि रुपए की कथा जितनी रोचक है उतनी जटिल नहीं है। जटिल थोड़ी सी है तो अर्थ शास्त्रियों ने बड़ी बड़ी पेचीदा शब्दमाला का प्रयोग करके इसे और भी जटिल बना दिया है। सीधी भाषा में लिखने से यह सम्भव है कि हम इसे सरल बना दें।

पहले पहल तो हम यह जानना चाहिए कि यह रुपया है क्या?

'भाई भलो न भैयो सबसे बडो रुपयो'—ऐसा जब कोई कहता है तब तो रुपए के निश्चित मूल्य को ध्यान में रख कर यह उक्ति नहीं कही जाती क्योंकि रुपए की निश्चित निर्धारित मूल्य और "भयो भाई" के बीच यहां तुलना नहीं है। यहां तो रुपए को धन का साधारण प्रतीक मान कर उसकी महिमा का बखानना है। और उस महिमा को शास्त्रीय विधि से समझने के लिए हम गहरे पानी में उतरना होगा, रुपए के सब पहलुओं पर विचार करना होगा और उन पहलुओं से क्या हानि लाभ है, समझना होगा।

पर मेरा प्रस्ताव है कि सबसे पहले हम यह समझ लें कि सिक्के के

चलण की जरूरत क्या है और कम-कम इसकी व्यवस्था में प्रगति हुई।

सिक्के की आवश्यकता

एक पल के लिए हम यह कल्पना करें कि एक ऐसा समाज है जिसमें सिक्का है ही नहीं और फिर हम अपने मन में एक ऐसा नक्शा खींचें जो हमें यह बताये कि बिना सिक्के के उस समाज का रोजमर्रा की जरूरतें पूरा करने और लेन-देन का व्यवहार कैसे चलेगा। मान लीजिए कि ऐसे बिना सिक्के के समाज में एक मनुष्य के पास कुछ अन्न है और कुछ नए वस्त्र भी हैं। दूसरा उसका पड़ोसी है। उसके पास कुछ कपास है और कुछ भूसा भी है। एक तीसरे पड़ोसी के पास घी है और कुछ तेल भी है।

अब ये तीनों आदमी सुबह उठकर कुछ तरकारी और दूध लेने के लिए निकलते हैं और दूध और तरकारी बेचनेवाला के पास पहुँचते हैं। दूधवाले को एक ने कहा कि मेरे पास कुछ कपड़ा है इसे तुम ले लो और बदले में मुझे दूध दे दो। इसी तरह तरकारी बेचनेवाले से दूसरे ने कहा कि कुछ तरकारी दे दो और बदले में मुझसे कुछ अन्न ले लो। पर तरकारी बेचनेवाले और दूध बेचनेवाले को न तो कपड़ा चाहिए न अन्न चाहिए। इसलिए वे या तो कपड़े या अन्न से तरकारी और दूध का बदला करने से इन्कार करेंगे, या दूध और तरकारी के बदले में इतनी ज्यादा मिकदार अन्न और कपड़े की माँग करेंगे कि शायद ये सज्जन बिना दूध और तरकारी के रहना पसन्द करेंगे। नतीजा यह होता है कि बिना दूध और तरकारी के ही ये सज्जन वापिस घर लौट आते हैं।

दूसरे पड़ोसी के पास कुछ कपास और भूसा है। दूध बेचनेवाले को भूसे की जरूरत है, इसलिए भूसे से दूध का बदला करने पर तो वह राजी हो जाता है, पर कपास लेना नहीं चाहता। इसलिए कपास पड़ोसी के पास ज्यों-की-त्यों बेकार वस्तु के रूप में पड़ी रह जाती है।

इसके बाद ये तीनों पड़ोसी कुछ मसाला खरीदने निकलते हैं। मसालेवाले को कुछ कपड़े की जरूरत है। इसलिए प्रथम सज्जन का कपड़ा लेकर वह बदले में उसे मसाला दे देता है। पर उसे अन्न नहीं चाहिए। इसलिए

उपरोक्त सज्जन का अन्न ज्यों का-त्यों उनके पास रह जाता है। अन्य पडोसियों के पास कुछ घी है तेल है कपास है और भूसा है। उन्हें भी मसाला लेना है। पर मसालेवाले को न घी की जरूरत है और न उसे तेल कपास या भूसा चाहिए। इसलिए वह इन चीजों के बदले में मसाला देने से इन्कार कर जाता है।

अदला-बदली की व्यवस्था से असुविधा

अब प्रथम सज्जन को दूध, तरकारी, मसाला ये तीन चीज लेनी थी। उनमें से उन्हें केवल मसाला मिला। इनके पडोसियों को भी तीनों चीजें लेनी थी। उनमें से केवल एक को दूध मिला। अब ये सब लोग इसी खोज में है कि जो चीजें इनके पास है उनकी चाह वाला कोई दूध तरकारी और मसालाफरोश मिले तो इन लोगों को अपनी इच्छित वस्तुएं मिलें। और जब तक परस्पर की इस अदला बदली की चाह वाले मनुष्य नहीं मिलते तब तक इन्हें अपना इष्ट वस्तुओं के बिना गुजारा करना पडता है। इन लोगों के पास जो चीज है उनकी जरूर किसी-न किसी को चाह है। वैसे ही जिनके पास दूध तरकारी और मसाला है उन्हें भी इन चीजों को देकर दूसरी चीजें लाना है। पर जब तक परस्पर की अदला बदली वाले मनुष्य नहीं मिल जाते तब तक सभी को अपनी अपनी इच्छा पूर्ति के लिए बैठे रहना पडता है।

इस उदाहरण के आधार पर हजारों बेचनेवाले और हजारों खरीदनेवालों कल्पना कर सकते है जिनमें किसीको कोई चीज चाहिए और किसीके पास कोई चीज आवश्यकता से ज्यादा है जिसके लिए वह गाहक ढूंढ रहा है। इन चीजों की अदला बदली के लिए ये हजारों आदमी गाहक ढूंढते-ढूंढते शाम तक थक जायगे और फिर भी शायद उनका सौदा समय पर समाप्त न होगा। ऐसे समाज में समय की कितनी बरबादी होगी कितनी अव्यवस्था होगी भोले आदमी को चालाक आदमी कैसे ठग लेगा—इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

इसके अलावा ऐसे समाज में यह जोखिम तो रहेगी ही, कि इस अदला बदली में वस्तु की जात बिगड़गी, और तोल जोख में चीज बरबाद

भी होगी। समय की बरबादी, चीज़ों की बरबादी और चीज़ों की जान की बरबादी! और रोज़ का झगड़ा, तकरार, ठगी यह अलग। जैसे बिना राजा के राज्य में अंधेर अवश्यम्भावी है वैसे ही बिना सिक्के के समाज में लेनदेन के राज्य में यह अंधेर अनिवार्य हो जाता है।

अंधेर को मिटाने के लिए, व्यवस्था-स्थापना के लिए, शांति रक्षा के लिए जैसे मनुष्यों ने मिल कर मनु से राज्यसिंहासन पर बैठने की प्रार्थना की और उन्होंने राजा बन कर सुख और शांति का संचार किया वैसे ही किसी समझदार राजा ने समाज के लेनदेन के क्षेत्र में अराजकता और इस गड़बड़ को मिटाने के लिए सिक्के को राज्यसिंहासन पर बैठाया।

जैसे बुरी राज्य प्रणाली, शांति और अमन को स्थापन करके भी अन्य बातों में समाज को हानिप्रद हो सकती है वैसे ही सिक्का प्रणाली भी यदि बुरी तरह या [illegible] से संचालित की जाय तो सिक्के के क्षेत्र में राजकता और नियम होते हुए भी समाज के लिए हानिकारक साबित हो सकती है।

जो हो, सिक्के की समाज में क्या आवश्यकता है, इसके बिना कितनी असुविधा हो सकती है, इसका उत्तर ऊपर दिये हुए काल्पनिक उदाहरण से समझ में आ जायगा।

सिक्का शुरू शुरू में कब चला, यह बताना तो असम्भव है। पर हज़ारों साल पहले सिक्का था, इतना तो निश्चित है। प्राचीन समय में सोना, चांदी, तांबा, पत्थर, कौड़ी—इनके अलावा और भी वस्तुओं के सिक्के चलते थे।

वैदिक काल में यहां सोने के सिक्के चलते थे जिनके नाम निष्क, शतमान, सुवर्ण, पाद आदि थे। बाद वालों के सिक्कों के नाम मिलते हैं—जैसे पण, कार्षापण, विंशतिक, त्रिंशतिक आदि। रुपया शेरशाह का चलाया हुआ बताया जाता है।

सिक्का राजा ने क्यों चलाया?

यह प्रश्न हो सकता है कि सिक्का राजा ने ही क्यों चलाया? व्यापारी

भी तो चला सकते थ । या तो इन अदला-बदली करनेवाला न ही क्यो न इसका सचालन किया ? इसका उत्तर कठिन नहीं ह ।

यदि लोग जिन्सो की अदला-बदली छोड कर सिक्के से हर चीज की अदला-बदली कर जसा कि सिक्के के आविर्भाव के बाद होता आया ह तो यह आवश्यक ह कि सिक्के की साख इतनी जबरदस्त होनी चाहिए कि उस साख में किसीको वहम या शक करने के लिए रत्ती भर भी गुजाइश न हो । यदि हम जिन्सा की जिन्सा से अदला बदली करते ह तो उन अदला बदली की जानवाली जिन्सा की जात, उनकी माप-तौल वगरह सब चीजो को सामने रख कर कितनी अमुक जिन्स म कितनी दूसरी अमुक जिन्स की अदला बदली हो, इनका लेन और देनवाल दोनो को विचार करना पडता ह । इस विचार में बहस मुबाहसा ता होता ही ह पर चूकि किसी भी जिन्स की जात हर हालत में एक सी नही बनी रहतो इसलिए जात की निरख की बार बार जरूरत पडती ह । इसमें समय की बरबादी होती ह *बकझक होती ह—फिर भी लेन देनवाल को पूरा सन्तोष नही होता।*

इस बकझक को मिटाने के लिए ही ता सिक्का सिंहासन पर बठा था । इसके माने यह थ कि सिक्क के सफलता से चलन क लिए यह आवश्यक था कि जसे जिन्सों की जात और माप-तौल क बारे में रोजमर्रा की निरख की जरूरत पडती थी वसे कोई जरूरत सिक्क की जात और माप-तौल की निरख क सम्बन्ध म न रह—अर्थात सिक्का म जो धातु ह उसकी जात सदा यकसा हो और उसकी तौल भी सदा यकसा हो । इस निश्चितता स ही तो सिक्क की धाक और साख जमती ह । फिर यदि सिक्के की भी जात माप तौल पर लेन-देनवाला क बीच बहस जारी रहे तो सिक्के के राज्य में भी वही अराजकता आ जाती ह जो जिन्सा की अदला-बदली म थी और सिक्का एसी हालत में एक अजा गल-स्तनवत *निकम्मी चीज बन जाता है ।*

प्राचीन समय में जब सिक्क का आविर्भाव हुआ तब सिक्के की कीमत इसी बुनियाद पर टिकी थी कि इसम कितनी, कौनसी और कितनी अच्छाई की धातु ह । धातु की कीमत पर ही तो आखिर सिक्के की साख थी । मान लीजिय कि एक सुवर्ण मुद्रा में एक तोला

खालिस १०० की अच्छाई का सोना है, तो उस मुद्रा की कीमत है—
१ मुद्रा = १ तोला १०० की अच्छाई का सोना। जब एक मनुष्य एक गाय १ सुवर्ण मुद्रा में बेचता था तो वह यह मान लेता था कि मैंने एक तोला सोना १०० की अच्छाई का पाया है यानी उस मुद्रा की साख इस बात पर थी कि निश्चयात्मक रूप से उसमें १ तोला सुवर्ण है और वह सुवर्ण १०० की अच्छाई का है। गाय बेचनेवाले को इन दो बातों के सम्बन्ध में कभी कोई शक नहीं होना चाहिए कि मुद्रा में सोना १ तोला से कम भी हो सकता है, या तो अच्छाई १०० नहीं, ९८ भी हो सकती है। और यह निश्चय कैसे होगा?

दूसरी बात है। जब तक उस मुद्रा की अच्छाई और वजन के बारे में कोई जोरदार व्यक्ति जामिन नहीं है तब तक उस मुद्रा की तौल और अच्छाई के बारे में लोगों के दिल में पूरा इतमीनान नहीं हो सकता। राजा को मुद्रा चलाने में क्या बीच में पड़ना पड़ा? प्रजा ने ही क्यों नहीं मुद्रा चला दी? जिन्सों की अदला-बदला करनेवालों ने ही यह कारोबार क्यों न चला लिया? इसका उत्तर अब समझ में आ जायगा।

प्रजा यदि मुद्रा चलाते तो फिर उसमें भी एक ऐसे जबर्दस्त व्यक्ति की जरूरत पड़ती जिसकी साख आसमानी सुलतानी हरकतों से परे हुई बनसी को छाप कर बाकी ध्रुव की तरह अचल हो। यदि लोभवश कोई मुद्रा का सोना कम कर दे या उसकी अच्छाई कम कर दे तो फिर लोग तो चौपट हो जाय, और मुद्रा चलानेवाला लोगों की श्रद्धा का अनुचित फायदा उठा कर मालामाल हो जाय। और ऐसे धोखेबाज को फिर चाहे कारागार में ही क्यों न ठेल दिया जाय पर लोगों का जो चौपट कर दिया गया उस घाटे की पूर्ति तो होने से रही।

इस तरह की धोखेबाजी न हो, लोगों की सिक्के की अच्छाई और तौल में अटूट श्रद्धा बनी रहे, इस भार-पालन के लिए राजा को छोड़ अन्य कौन व्यक्ति उपयुक्त हो सकता था? इसके यह माने नहीं कि किसी राजा ने ऐसी धोखेबाजी नहीं की है। इतिहास में ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जहाँ राजा ने लोभ का संवरण न करके ऐसा अनुचित कर्म किया। पर ऐसे उदाहरण कम हैं। और यह बात भी है कि राजा के द्वारा इस तरह

की गई धोखबाजी के कारण जो क्षति हुई हो उसकी पूर्ति की संभावना है। साधारण नागरिक तो धोखा देकर नौ-दो ग्यारह भी हो सकता है। इस लिए इस काम के भार के लिए स्वभावतया ही राजा सर्वश्रेष्ठ माना गया।

कई मुल्कों में कई ऐसे सेठ भी हुए हैं जिनकी साख को लोगों ने राजा की साख से कहीं ऊंचा माना। यहां भी ईस्ट इंडिया कंपनी के जमाने में जगत सेठ को मुद्रा चलाने का अधिकार था और वर्तमान समय में तो प्रायः हर मुल्क में सिक्के की व्यवस्था के लिए एक विशेष बैंक के हाथ में ही सिक्के सम्बन्धी सारा कारोबार चला गया है। पर शुरू शुरू में यह संभव नहीं था कि सिक्के की व्यवस्था किसी साधारण नागरिक के हाथ में हो। इसलिए राजा के हाथ में इस व्यवस्था का होना अनिवार्य हो गया।

इतिहास लेखक एक युग को सुवर्ण-युग के नाम से पुकारते हैं। इसके बाद का युग रौप्य-युग हुआ पीछे ताम्र-युग और अन्त में लौह-युग आया। सुवर्ण पृथ्वी के गर्भ में शुद्ध अवस्था में अन्य किसी धातु से अमिश्र मिलता है और चांदी अन्य धातुओं से मिश्रित अवस्था में मिलती है। इसलिए चांदी एक युग में सुवर्ण की अपेक्षा दुर्लभ भी मानी जाती थी। यही कारण था कि उस प्राचीन काल में चांदी और ताम्र सुवर्ण से कहीं ज्यादा मूल्यवान माने जाते थे। जो हो आज तो सोने और चांदी के सिक्के ही अधिक लोकप्रिय हैं और इस लोकप्रियता के पीछे कुछ कारण भी हैं।

सिक्का सोने चांदी का क्यों ?

अन्य किसी धातु या चीज के भी सिक्के कायम किए जा सकते हैं। मसलन एक सेर गेहूं का भी सिक्का हो सकता है। पर इसमें कितनी भारी अड़चनें हैं यह सहज ही समझ में आ जायगा। यदि एक सेर गेहूं का एक सिक्का चलाया जाय तो फिर १ १ सेर गेहूं को अलग अलग कोथलियों में हमें भर देना पड़ेगा। उसमें काम तो काफी बढ़ ही जायगा, पर जो साल भर की पुरानी कोथली होगी उसमें से यदि वह फट गई तो, कुछ गेहूं निकल भी जायगा। इसलिए तौल का कोई भरोसा नहीं। गेहूं की जात भी २ ४ साल के बाद कोथली में खराब हो सकती है। इसलिए नई कोथली जिसमें नया गेहूं होगा, उसे तो लोग स्वीकार कर लेंगे, पर पुरानी कोथली

तो कोई छूएगा भी नहीं क्योंकि उसके गेहूं की जान के सम्बन्ध में भी कोई खातिर नहीं। नतीजा यह होगा कि नई कोथली और पुरानी कोथली यानी नए और पुराने सिक्के की कीमत में फर्क पड़ जायगा। पुरानी कोथली अर्थात् पुराने गेहूं के सिक्के का बट्टा लगने लगेगा—अर्थात् उसकी कीमत नए के मुकाबिले में नीची होगी। इसके अलावा गेहूं की कोथली का सिक्का वजनी भी होगा। १०० सिक्कों का एक साथ उठाना करीब करीब असम्भव-सा होगा। और भी अड़चन है। कोथलियों का कपड़ा किसी काम में न आकर बरबाद होगा वह फिजूलखर्ची अलग। मेरा खयाल है कि इसमें कितनी असुविधा हो सकती है इस विस्तार से समझाने की जरूरत ही नहीं है। बताना तो यह है कि यदि हम सुविधा असुविधा का खयाल छोड़ दें, और कीमत की स्थिरता का खयाल भी छोड़ दें तो सिक्का किसी भी चीज[1] का हो सकता है। ऐसे असुविधावाले सिक्कों का हमें प्राचीन समय में वर्णन भी मिलता है।

सिक्का मेहनत की बुनियाद पर भी रचा जा सकता है। मसलन

---

[1] संस्कृत व्याकरण में 'पशव्यं', 'पशव्या', 'गौविंशतिकम्' जैसे शब्द मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि प्राचीन समय में यहां पशु, अनाज आदि से चीजें 'खरीदी' जाती थीं। अंग्रेजी में pecuniary शब्द "आर्थिक" के अर्थ में व्यवहृत होता है। इसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के pecunia शब्द से है जिसका अर्थ है ढोर, अर्थात् गाय-बैल। कहते हैं कि महाकवि होमर ने जब कभी किसी चीज की कीमत बताई है तब बैलों की संख्या में—सो भारत की तरह ग्रीस में भी मूल्य मापने का काम इन पशुओं से लिया जाता था।

प्राचीन काल में धनिकों के धन की माप भी पशुओं से की जाती थी। अमुक पुरुष के पास इतनी करोड़ गाएं थीं, इसका तात्पर्य इतना ही है कि इतनी करोड़ गायों की उसके पास सम्पत्ति थी। अमुक ने इतनी करोड़ गाएं दान में दीं, यह भी दान की माप का द्योतक है। इससे यह पता लगता है कि जो स्थान आज सोने का या नोट का है वह किसी समय पशुओं का रहा होगा।

एक मनुष्य की मेहनत के नोट निकाले जा सकते हैं, जो उस नोट के स्वामी को यह अधिकार देंगे कि वह नोट छापनेवाली बैंक या उसकी कोई व्यवस्था करनेवाली संस्था से एक मनुष्य की मजदूरी चाहे जब आह्वान कर ले।

पर इसमें भी असुविधा होगी। एक मनुष्य की मजदूरी—वह मोटे की या दुबले की जवान की या बूढ़े की? रोगी की या नीरोग की? इन सब असुविधाओं को दूर करने के लिए स्वाभाविक ही यह तय पाया कि सिक्का ऐसी वस्तु का हो जो ज्यादा सुलभ न हो अर्थात् अति अधिक मिकदार में जिस वस्तु की पैदाइश न हो जो जल्दी न छीजे अर्थात् जल्दी से घिस न जाय जिसकी जात में, सिक्का पुराना होने पर भी कोई अन्तर न पड़े और जिसकी जात अमुक अच्छाई की जांच पड़ताल के बाद निश्चयात्मक रूप से कायम की जा सके जिसकी थोड़ी सी मिकदार में कीमत बड़ी हो और जिसके, चाहे जितने टुकड़े किये जायं प्रत्येक टुकड़े की वजन के हिसाब से कीमत बनी रहे।

और चूंकि ऐसी वस्तुएं सोना और चांदी ही थीं प्रधान सिक्के की रचना इन्हीं धातुओं पर की गई। हीरे पन्ने और अन्य रत्नों की रचना से थोड़े से वजन की काफी कीमत हो जाती पर इनकी जात में इतना अन्तर होता है कि एक ही हीरा लाख रुपए रत्ती का भी हो सकता है और सौ रुपए रत्ती का भी। सो सिक्के के वास्ते रत्न भी उपयुक्त नहीं थे। इसलिए वरमाल सोने चांदी के गले में ही पड़ी।

इस सिलसिले में हमें नोटों की रचना और उनकी व्यवस्था के सम्बन्ध में भी कुछ ज्ञान लेना जरूरी है।

सिक्का जैसा कि हमने पहले बताया है, अपनी कीमत स्वयं लेकर चलता है। एक सुवर्ण-मुद्रा १ तोला खालिस १०० की अच्छाई के सोने की है तो वह कीमत उस मुद्रा के भीतर ही भरी पड़ी है। पर नोटमें यह बात नहीं है। नोट एक दृष्टि से तो केवल कागज का टुकड़ा है। कागज के टुकड़े की कीमत क्या? पर नोट की कीमत इसलिए है कि हमें आवश्यकता हो तो नोट निकालनेवाली संस्था से हम चाहे जब उस नोट की कीमत तलब कर सकते हैं।

आजकल तो सभी मुल्कों की नोट निकालनेवाली संस्थाओं या प्रधान कोठियों (Reserve Banks) ने नोट की स्वयंसिद्ध मुद्रा से अदला बदली बन्द कर दी है। पर इससे नोट की माल मोल लेने में कोई अन्तर नहीं हुआ है क्योंकि नोट के बदले में जिन्स या श्रम खरीदने में कोई कठिनाई नहीं है। नोट की जो कीमत है वह इसी आश्वासन पर व्यवस्थित है कि उसकी जिन्स या श्रम से अदला-बदली में कोई दिक्कत नहीं है, पर किसी कारणवश यदि नोट निकालनेवाली संस्था नस्तनाबूद हो जाय या उस संस्था का दिवाला निकल जाय तो फिर नोट की कीमत अखबार के टुकड़े से भी गई-बीती। इसके विपरीत, मुद्रा की कीमत चूंकि मुद्रा के भीतर ही है इसलिए मुद्रा निकालनेवाला राजा हतश्री हो जाय या सिंहासनच्युत हो जाय तो भी मुद्रा के मालिक को कोई हानि न होगा।

शायद नोट और सिक्के की तुलना के लिए शालग्राम विष्णु और विष्णु की मूर्ति की तुलना कुछ अंश तक उपयुक्त हो सकती है। शालग्राम विष्णु स्वयं विष्णु है, और पाषाण निरा पत्थर है। पर पत्थर की मूर्ति भक्त की दृष्टि

में प्राण प्रतिष्ठा के बाद विष्णु-तुल्य ही इसलिए बन जाती है कि भक्ति भाव से पूजने पर वह विष्णु की प्राप्ति करा देती है। कागज का टुकड़ा बस तो कागज ही है पर नोट निकालनेवाली संस्था उसमें प्राणप्रतिष्ठा स्थापन करके उसे सजीव बना देती है—उस कीमत का सपूर्ण प्रतिनिधित्व दे देती है।

पर शायद नोट की सपूर्ण उपमा हुण्डी से दी जा सके क्योंकि नोट एक तरह की दर्शनी हुण्डी है जो चाहे जब नोट निकालनेवाली संस्था से सिकराई जा सकती है। इस संबंध में यह बता देना आवश्यक है कि रुपए की मुद्रा भी एक प्रकार का चाँदी पर छपा हुआ नोट मात्र ही है। रुपए के भीतर जो चांदी है उसकी कीमत पूरे एक रुपए की नहीं है। रुपए में पहले कुल १६५ ग्रेन अर्थात् ११/१२ तोला चांदी थी और उस चांदी की कीमत, आज से कुछ समय पहले के भाव से (अर्थात् १०० तोले = ६२।।) कुल ० ९ २।। पाई की होती थी। हाल में नया रुपया ढाला गया है जिसमें चांदी की मात्रा पहले से बहुत कम है अर्थात् १८० ग्रेन में कुल ९० ग्रेन। चांदी का भाव इस समय प्रायः १०० तोले = १२०) है। इस दर से भी नए रुपए की चांदी की कीमत प्रायः उतनी ही सी होती है। इसके माने यह हुए कि यदि रुपया चलाने वाली सरकार की अवहेलना करके रुपए की मुद्रा के भीतर भरी हुई चांदी की कीमत के आधार पर ही हम रुपए को बेचें, तो रुपएकी कीमत हमें कुल प्रायः ।।=)।। मिले। इसलिए रुपएके चांदी के सिक्के और नोट को हम स्वयंसिद्ध मुद्रा नहीं कह सकते।

पर वर्तमान समय में शायद ही ऐसा कोई मुल्क है जहां स्वयंसिद्ध मुद्रा कायम हो। १९३३ तक अमरीका का डालर स्वयंसिद्ध मुद्रा थी, पर वहां भी सिक्के के दामों में जब से सरकारी दस्तंदाजी शुरू हुई और सिक्के के दाम गिराए गए तब से स्वयंसिद्ध मुद्रा अर्थात् ऐसी मुद्रा जिसकी पूरी कीमत मुद्रा के भीतर ही हो, नहीं रही। जहां तक खयाल किया जाता है, आज सभी सुसभ्य देशों में नोटों का अर्थात् प्रतीक मुद्रा का ही चलण है।

इस प्रणाली अर्थात् नोटों के चलण के लाभ और हानियां अनेक हैं। इसका विश्लेषण आगे चलकर करेंगे।

नोट क्यों आया ?

पर स्वयंसिद्ध मुद्रा के बाद प्रतीक मुद्रा अर्थात् नोट का आविर्भाव कैसे हुआ इसका विचार भी कर लें।

जब संसार में लेन-देन बढ़ा और लाखों का लेखा और करोड़ों पर कलम चलने लगी तब स्वभावतया जिस मुद्रा को हमने कम वजनी और धनमूल्यवाली माना था वह भी अधिक वजनी मालूम देने लगी। एक गाहक के यहां से हमें आज दस लाख रुपए का भुगतान मंगाना है और दूसरे को उतना ही भेजना है तो यदि सब-का-सब लेन-देन सुवर्ण-मुद्रा में ही हो तो करीब २५,००० सुवर्ण मुद्राएं—यदि एक सुवर्ण मुद्रा की कीमत ४० रुपए मान लें तो—हमें देनी और लेनी होंगी। इन मुद्राओं का वजन भी करीब ८ मन होगा। २५,००० सुवर्ण मुद्रा के गिनने के लिए कितना समय चाहिए और उस वजन को उठाने के लिए कितने आदमी चाहिए। उसमें समय की कितनी बरबादी होगी इसकी कल्पना आसान है। इसके अलावा यदि सिक्कों द्वारा भुगतान हो तो सिक्कों की घिसाई और उसके द्वारा होनेवाली धन की छीजन का भी प्रश्न तो है ही। इन सब असुविधाओं और हानियों से बचाव के लिए नोट अर्थात् प्रतीक मुद्रा ने प्रवेश किया। इसमें न गिनने का इतना झंझट, न इतना वजन। १०० नोट यदि १० १० हजार के दे दिये तो दस लाख का भुगतान समाप्त हुआ।

चेक क्यों चला ?

पर आगे चल कर व्यापार और लेन देन ज्यादा बढ़ा तब तो प्रतीक मुद्रा भी असह्य मालूम होने लगी और सारा लेन देन चेक द्वारा ही होने लगा। चेक एक तरह का आज्ञा पत्र है, जो आज्ञा देनेवाला अपनी बैंक के नाम लिखता है कि इतना रुपया अमुक सज्जन को दिया जाय। और उस आज्ञापत्रधारी को उतनी रकम बैंक से मिल जाती है। स्वयंसिद्ध मुद्रा का प्रतिनिधित्व प्रतीक-मुद्रा को मिला, और उसके बाद एक कदम आगे चले तो प्रतीक-मुद्रा का स्थान चेक को मिला। सिक्के की प्रगति की यह कथा काफी दिलचस्प है।

हमारे देश में तो बडे शहरो को छोड कर चेक का चलण कही नही ह । चेक ता वही चल सकता ह जहा प्रथम तो बक हो, दूसरे जहा लेन देन का काम भी ज्यादा हो और बडी बडी रकमों का लेन दन हो । चूकि गावो में यह स्थिति नही ह इसलिए हमारे देश में तो,जसा कि ऊपर कहा जा चुका ह चेक का चलन बडे शहरो तक ही सीमित ह, और नोटो का कस्बो और बड गावो तक । छोट गावो में तो चादी और तावे के सिक्का का ही चलण ह। पर य चादी-ताव के सिक्के भी तो जसा कि पहले बताया जा चुका हैं, एक तरह के धातु पर छपे नोट—प्रतीक मुद्रा ही ह क्योकि उनकी स्वयसिद्ध कीमत का उनकी निर्धारित कीमत से कोई मेल नही खाता ।

नोट से लाभ

प्रतीक मुद्रा प्रणाली मे लाभतो स्पष्ट ह । वजन कम होता ह । लेन देन म गिनती करन में, समय की बचत हाती ह । मुद्रा हाथा में से रोज रोज निकल उसस धातु की जो छीजत होती ह उसकी बचत होती ह । पर एक और लाभ ह । मान लीजिए, सारे देश में लन-देन के कारोबार के लिए १० करोड सुवण मुद्राआ की जरूरत ह । यदि प्रति मुद्राकी ४० रुपए कीमत मान लें, तो इस हिसाब स ४०० करोड रुपएके सोने की, देश के लन-देन की सहूलियत के लिए जरूरत होगी । पर यदि नोटो का चलण ह तो यही काम बहुत थोड सोने से चल जाता ह । आखिर नोट का काम तो इतना ही ह कि वह उतनी निर्धारित मुद्राओ का स्वामित्व नोट के स्वामी को सौंपता ह ।

यह सही ह कि आज एसा कोई मुल्क नही ह जहा नोट के बदले बक सुवण मुद्रा द दे । पर इससे नित्य प्रति के व्यवहार में कोई बाधा नही पहुची ह । यदि सुवण मुद्रा भी हमें नोटा के बदल में मिलती तो उस मुद्रा का उपयोग भी हम जिस, सम्पत्ति या मनुष्य-श्रम खरीदन में ही तो करत । और जब तक किसी मुल्क की साख सुरक्षित ह तब तक सुवण मुद्रा प्रचलित न हो तो भी नोट क्रय विक्रय में वही काम दता ह,जो काम सुवण मुद्रा देती । इसलिए सुवण मुद्रा का अभाव किसीको

नहीं खटकता। साख सुरक्षित है या नहीं इसका पता भी तो हमारे नोट की कीमत गिरने में क्या है इससे लगता है। इस प्रश्न का विवेचन तो आगे चल कर करेंगे यहाँ तो मुद्रा के बजाय नोट चलन में क्या-क्या किफायत है उसका दिग्दर्शन कराना है।

बतलाना तो यह था कि नोट का रूप इतना ही है कि वह उतनी निर्धारित मुद्राओं का स्वामित्व नोट के स्वामी को सौंपता है। मसलन आपके पास दस सुवर्ण-मुद्रा का नोट है। (यह उदाहरण-मात्र है क्योंकि जैसा कि ऊपर बताया गया है आज किसी भी मुल्क में स्वयंसिद्ध मुद्रा का चलन नहीं है) तो आप चाहें जब नोट प्रसार करने वाले बैंक या संस्था के पास जाकर अपना नोट देकर उसके बदले में १० सुवर्ण-मुद्राएं मांग सकते हैं जिसके कि आप अधिकारी हैं और वह बैंक आपको १० सुवर्ण-मुद्राएं देगी जिसके लिए कि वह बाध्य है।

पर उस किसी भी साधारण समय की कल्पना नहीं की जा सकती जबकि तमाम नोटवाले अपने नोट बैंक को पेश करके बैंक से नोटों के बदले में मुद्रा मांगेंगे। यदि देश के कारोबार के लिए १० करोड़ सुवर्ण मुद्राओं के चलन की जरूरत है और लोग अपनी सुविधा के कारण मुद्राओं से नहीं, पर प्रतीक-मुद्रा अर्थात् नोटों से अपना काम चलाना चाहते हैं, तो यह स्पष्ट है कि जब तक नोट चलानेवाली बैंक की साख कायम है तब तक सारे सबके सब व्यक्ति नोट को भुना कर मुद्रा मांगने के झंझट में न पड़ेंगे। इसलिए बैंक सावधानी के लिए १० करोड़ सुवर्ण-मुद्राओं के प्रतीकों के पीछे केवल ३ करोड़ सुवर्ण-मुद्रा अपने कोष में रखे तो भी पर्याप्त है।

इसके माने यह हुए कि यदि हम अपना कारोबार केवल सुवर्ण मुद्राओं से ही चलाना चाहते हैं तब जहां १० करोड़ सुवर्ण मुद्राओं के लिए ४०० करोड़ रुपए के सोने की जरूरत होगी वहां यदि हम नोट प्रथा को अपना लें तो कुल १२० करोड़ रुपए के सोने से ही काम चल जायगा—अर्थात् बैंक १२० करोड़ रुपए के सोने के आधार पर आसानी से ४०० करोड़ रुपए की कीमत की प्रतीक-मुद्राओं का प्रसार कर देगी। बैंक को कोष में रखना पड़ा कुल १२० करोड़ रुपया। नोट प्रसार किय

कुल ४०० करोड रुपए की कीमत के। नोट प्रसारिणी बैंक का तलपट ऐसी हालत में इस प्रकार होगा—

४०० करोड—नोट चलन में डाले उसकी कीमत आई	१२० करोड—सोना खरीदा २८० करोड—ब्याज पर रोका
४०० करोड	४०० करोड

इस तरह २८० करोड रुपए का नाणा बेब्याज जो बैंक को मिल गया उसे लोगों को उधार देकर बैंक मुनाफा बना जाएगी। देश के लिए यह किफायतसारी अवश्य ही ग्राह्य चीज है। इस तरह नोट ने अपने गुणों से समाज को मुग्ध करके अपना सिक्का जमा लिया।

नोट से हानि

पर "जड चेतन गुण दोषमय विश्व कीन्ह करतार।" नोटों में गुण है तो अवगुण भी है। एक अवगुण तो प्रत्यक्ष है। चूंकि स्वयंसिद्ध मुद्रा की कीमत तो इसके गर्भ में ही है और प्रतीक मुद्रा (नोट) की कीमत तो जब तक प्रतीक मुद्रा का प्रसार करनेवाली बैंक सलामत है तभी तक कायम है, इसलिए राज दुराजी के जमाने में नोटों में लोग सहज ही विश्वास खो बैठते हैं और स्वयंसिद्ध सिक्कों का संग्रह करके उन्हें दबाने लगते हैं।

इस महायुद्ध में पोलण्ड, फ्रांस वगैरह मुल्कों में जहां जहां राज गिरने की सम्भावना हुई वहां लोग नोटों में विश्वास खो बैठे। पर चूंकि स्वयंसिद्ध मुद्रा का इन मुल्कों में चलण नहीं था इसलिए लोग जवाहरात या सोना ऐसी वस्तुओं का संग्रह करने लगे, या ऐसी वस्तुओं को लेकर देश के बाहर भागने लगे। यहां भी जब फ्रांस की हार हुई उस जमाने में लोगों ने रुपया का बुरी तरह संग्रह करना शुरू किया। यों तो जैसा कि पहले बताया जा चुका है, रुपए का सिक्का भी एक तरह का नोट ही था, क्योंकि इसकी चांदी की कीमत तो कुल ६ आने २॥ पाई थी। पर रुपए के सिक्के के पक्ष में कुछ बातें थीं। आखिर इसकी स्वयंसिद्ध कीमत

कागज के नोट की कीमत में तो ज्यादा ही थी। इसलिए लोगों ने घबडाहट में इसका संग्रह करना शुरू कर दिया।

यह संग्रह करने का मर्ज यहां तक बढ़ा कि छोटी रकमों के लेन देन के लिए रुपए का सिक्का कुछ दिनों के लिए दुर्लभ-सा होने लगा था। सिक्कों की कोई कमी तो न थी पर जब लोग भय से पागल से हो जाते हैं उस समय बुद्धि से काम नहीं लिया जाता। इसलिए भयभीत लोगों ने चांदी के रुपयों की धरोहर इकट्ठी करके सिक्के का अकाल-सा पैदा कर दिया और अन्त में इस कठिनाई को दूर करने के लिए सरकार ने एक रुपए का नोट भी छापा और सिक्के दबा बैठने के विरुद्ध कानून भी बनाया। इस बीच में लोगों में भी विश्वास का पुनः संचार होने लगा। पर भय के या अविश्वास के जमाने में स्वयंसिद्ध मुद्रा की या तो चांदी के रुपए जैसी अर्धस्वयंसिद्ध मुद्रा की साख तो कम सुरक्षित रहती है और प्रतीक मुद्रा की साख कम नस्तनाबूद होने लगती है। इसका आभास इस और पिछले महायुद्ध के इतिहास में मिल सकता है।

इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि स्वयंसिद्ध मुद्रा के मुकाबिले में प्रतीक मुद्रा का सबसे बड़ा दोष तो यह है कि प्रतीक-मुद्रा की कीमत के स्थायित्व के बारे में या सुरक्षितता के बारे में घबड़ाहट के जमाने में पूरा यकीन तो कभी हो ही नहीं सकता। पर क्या हम सुरक्षितता के लिए इतनी बड़ी कीमत चुकानी वाजिब होगा कि स्वयंसिद्ध मुद्रा का ही चलन रख कर हम सुवर्ण मुद्राओं के भार का वहन कर, उनके गिनन-सम्हालन के झंझट में समय खावें और उनकी छीजन—जो मुख्य के धन की छीजत होगी—उसे बरदाश्त करें? और इसके अलावा, जो काम १२० करोड़ रुपए के सोने से चल सकता है उसके लिए, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, ४०० करोड़ रुपए की रकम को सोने में क्यों बंद रखें?

राज-मुद्रा में अचितता

आज हमारे देश में नोटों का कुल चलण प्रायः ८०० करोड़ रुपए की कीमत का होगा। पर कुछ समय पहले यह चलन २५० करोड़ रुपए का था। इसका मान यह है कि यदि रिजर्व बैंक, जो इन नोटों का प्रसार

करनेवाले बैंक हैं, उनकी साख को ठेस पहुँचती तो इन २५० करोड़ के नोटों की कीमत को खतरा था।

पर ऐसी स्थिति की हम कल्पना करें तब तो यह जानना चाहिए कि इससे कहीं ज्यादा खतरा तो सरकारी प्रोमिसरी नोटों की रकम को ही सकता था और इन सरकारी प्रोमिसरी नोटों में तो प्रजा की कुल रकम लगभग १००० करोड़ के लगी हुई थी—अर्थात् नोटों की २५० करोड़ की कीमत से चौगुनी रकम तो प्रोमिसरी नोटों में लगी हुई थी। इससे पता लगेगा कि नोटों की सुरक्षितता की जब हम बात करते हैं तब हम भूल जाते हैं कि किसी भी राष्ट्र के पतन के कारण होनेवाली क्षति से बचने का तो कोई रामबाण उपाय है ही नहीं और उस होनेवाली सारी क्षति में नोटों की कीमत नस्तनाबूद हो जाने के कारण होनेवाली क्षति का स्थान अपेक्षाकृत छोटा है।

नोट का स्वामी यह सहज ही कह सकता है कि सारी क्षति क्या होगी इससे मुझे क्या मतलब—मुझे तो अपने नोट की कीमत के नाश से होने वाली क्षति का ही डर है। पर इसका उत्तर तो यह है कि देश के सिक्के की नीति व्यक्ति की सुविधा के लिए नहीं पर समष्टि की सुविधा के लिए बनाई जाती है, और इस दृष्टि से स्वयंसिद्ध मुद्रा से प्रत्यय मुद्रा की सुरक्षितता कम होने पर भी देश के लिए प्रतीक मुद्रावली का त्याग और केवल स्वयंसिद्ध मुद्रा की नीति का ग्रहण बड़ी खर्चीला होगा।

३

प्रतीक मुद्राप्रणाली में एक दोष और है—यदि उसे दोष कहा जाय तो—और उस दोष का वर्णन करने से पहले कुछ तत्सम्बन्धी बातों का विवेचन करना आवश्यक जान पड़ता है।

हमने बताया है कि नोट प्रसार करनेवाली संस्था यदि ४०० करोड़ रुपयों के पीछे १२० करोड़ रुपए का भी सोना रखे तो पर्याप्त होगा क्योंकि जबतक बैंक की साख अक्षुण्ण है तबतक कौन नोट को भुना कर बदले में सुवर्ण-मुद्रा मांगेगा? इसलिए नोट की साख बनाने को जो नोटों के पीछे सोना रखा है उस पर बाकी नोट प्रसारक बैंक की दक्षता सावधानी और नेकनीयती पर है।

मान लीजिए कि १२० करोड़ के सोने के मद्दे ४०० करोड़ रुपए के नोटों के बजाय बैंक ने किसी भी कारणवश, अपनी मर्जी से या बाध्य होकर ८०० करोड़ रुपए के नोट चलन में डाल दिए तो जो सोने का सिक्का पहले प्रतिशत नोटों के पीछे ३० की थी वह सिर्फ १५ का रह गई। ऐसी हालत में सहज ही नोटों की साख में लोगों को कुछ शक होने लगा। और मान लीजिए कि यदि नोट प्रसारक बैंक ने ८०० के बजाय उसी १२० करोड़ रुपए की कीमत के सोने की पूंजी के बल पर १६०० करोड़ के नोट चलन में डाल दिए तो फिर नोटों की साख बाजारों से डूबने लगेगी। और यदि १६०० करोड़ के बजाय ३२०० करोड़ के नोट चलन में डाल दिए तब तो लोगों में घबराहट फैल जायगी और लोग नोटों से दूर भागने लगेंगे क्योंकि ३२०० करोड़ के पीछे यदि कुल १२० करोड़ का ही सोना हो तब तो प्रति सौ नोट के पीछे केवल ३।।। रुपए का ही सोना रहा जो बैंक की जिम्मेदारी को देखते हुए अत्यन्त अल्प कहा जायगा।

यह मनगढ़न्त सा उदाहरण जानबूझ कर ही दिया है। कोई समझदार बैंक जानबूझकर सुख शान्ति के जमाने में ऐसा बेहूदा ढंग नहीं जानी पर असाधारण समय में ऐसी घटनाएं कई मुल्कों में हुई भी हैं। भारतवर्ष की ही बात लीजिए। इस समय जहां नोट प्रायः ८०० करोड़ रुपए के हैं वहां सोना कुल ४४ करोड़ रुपए का है।

नोटों का प्रसार करना आसान काम है। उसके लिए जरूरत है बस कुछ कागज की। टैक्स समय में या तो सरकार को कोई कर्ज देनेवाला नहीं मिलता या मिलता भी है तो बहुत कड़े सूद पर। इसलिए कई बार ऐसा हुआ है कि संकटापन्न सरकार ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति न तो टैक्स लगाकर की न कर्ज लेकर—उसने बस नोट छापनेवाली मशीनों को दिन रात चला कर अपना मतलब पूरा किया। प्रायः ऐसा भी हुआ है कि जिस सरकार ने यह तरीका अख्तियार किया उससे औचित्य की सीमा का उल्लंघन हुए बिना न रह सका—और वह इतनी दूर आगे बढ़ गई कि उसका दिवाला निकल के ही रहा।

फ्रांस की इतिहासप्रसिद्ध क्रांति के समय वहां कुछ नोट जारी किये गए थे जिन्हें assignat कहते थे। महन्त मठाधीशों की जो जायदादें जब्त कर ली गई थीं उसी की पुश्तों या आधार पर ये नोट जारी किए गए थे। मगर उस जायदाद की कीमत से कहीं अधिक के नोट निकाल दिए गए और इसका नतीजा यह हुआ कि इनकी कीमत बहुत नीचे गिर गई। कुछ काल बाद सरकार को मजबूर होकर इन नोटों को चलण से हटा लेना पड़ा।

२४ साल पहले रूस में कम्यूनिस्ट क्रांति के समय भी ऐसी ही बात हुई। वहां चलण में जो सिक्का था उसका नाम रूबल (Rouble) था। क्रांति से पहले एक रूबल की कीमत प्रायः २ शिलिंग अर्थात् १।=) थी। मगर बाद इसकी कीमत यहां तक गिर गई कि कुछ समय तक रूस में आध सेर रोटी के २५० रूबल और आध सेर चीनी के ६०० रूबल लगते थे।

फुलावट और गिरावट

इस तरह थोड़े सोने की पूंजी पर बेहद परिमाण में नोट निकालने की नीति को अंग्रेजी में Inflationary policy कहते हैं। हम इस अंग्रेजी परिभाषा के लिए चलण की फुलावट नीति—इस मुहाविरे का प्रयोग कर सकते हैं। इसी तरह किसी कारणवश नोट प्रसारक बैंक यह भी कर सकती है कि १२० करोड़ की कीमत के सोने के मद्दे ४०० करोड़ रुपये की कीमत के नोट चलण में न रख कर केवल २०० करोड़ रुपए के नोट ही

चलन में रखे या तो और भी घटा कर १७० करोड़ के ही रखे। इस नीति को अंग्रेजी में Deflationary policy कहते हैं। हिन्दी में हम इसे चलन की गिरावटी नीति कह सकते हैं।

इस फुलावटी नीति या गिरावटी नीति का कैसे प्रयोग किया जाता है इसका विवेचन भी आवश्यक है। पर यह विवेचन करने के पहले नोट कम अधिक परिमाण में चलन में डाल करके फुलावट पैदा की जाती है और कम नोट कम करके गिरावट की जाती है इस प्रयोग को भी हम समझ लें।

कोई नोट प्रचारक बैंक बिना सरकार की मर्जी के तो फुलावट या गिरावट ज्यादा देर तक कर ही नहीं सकती। इसलिए जब सरकारी मर्जी से यह काम होता है तो सरकारी सहयोग भी सहज आप मिल जाता है। ऐसी हालत में यदि फुलावटी-नीति का प्रयोग करना होता है तो एक तरीका तो यह है कि सरकार जितना खर्च करती है उससे कर कम उगाहती है—यानी मान लीजिए कि सरकार का खर्चा सालाना १००० करोड़ है तो कर लगा कर सरकार ने उगाहा केवल ७५० करोड़ और बाकी जो २५० करोड़ का घाटा है उसको कमी को—कमी रखा प्रधान कर वसूल करके उसकी पूर्ति की। नतीजा यह होता है कि आय में आया ७५० करोड़ और व्यय से निकला १००० करोड़। यह २५० करोड़ जो पास से बेसी निकला वह सरकार ने कहां से दिखाया? बस, सरकार ने सीधा-सा काम किया। उसने २५० करोड़ के नोट छापकर या तो बैंक से नोट छपवाकर उसे उधार लेकर लोगों को चुका दिया, और इस तरह २५० करोड़ चलन में ज्यादा प्रवेश कर गया।

यह तरीका तो तभी काम में लाया जाता है जब कि सरकार आर्थिक कठिनाइयों में फंसी हुई होती है या तो दिवालिया बनने की राह पर होती है। पर कभी कभी अपने देश का व्यवसाय सुधारने के उद्देश्य से भी हुण्डी की दर गिराने के लिए फुलावटी नीति की शरण लेनी पड़ती है। फुलावटी नीति से भावों में तेजी आती है, और मात्रा से सीमा के भीतर, इस नीति का प्रयोग करने से व्यवसाय पर अच्छा असर होता है, मुल्क की पैदाइश और कारखाने पनपते हैं। विदेशी बाजार

पर इसका असर खराब पडता है। इसलिए धनी मुल्क भी कभी-कभी अपने लाभ के लिए इस नीति का सीमा के भीतर प्रयोग करते हैं। उसका तरीका इस तरह का है।

उदाहरण के बतौर हमने बताया है कि प्रसारक बैंक ने ४०० करोड के नोटो के पीछे १२० करोड का सोना बतौर इसकी पुश्ती के रखा था। सोने की कीमत १ मुद्रा की १ तोला सोना थी और उसीका प्रतीक १ मुद्रा का नोट था। इसके माने ये १ तोला सोना = १ मुद्रा = १ मुद्रा का नोट। अर्थात १ नोट की कीमत १ तोला सोना थी। अब हमने यह निश्चय कर लिया कि हम अपने नोट की कीमत एक तोला सोना न रख कर केवल पौन तोला सोना ही रखेंगे। तो फिर प्रसारक बैंक के पास जो १२० करोड का सोना ४०० करोड के नोटो की पुश्ती के लिए था वह नोटो की ३० प्रतिशत कीमत का न रहकर ४० प्रतिशत कीमत का हो गया। फल यह हुआ कि १२० करोड के सोने के बदले में १६० करोड के नोट निकालने की हममें शक्ति हो गई। बस, हमने नए नोट निकाल कर बैंक और सराफा की मार्फत व्यापार में डाल दिए। व्यापार पनपने लगा। चीजो के दाम बढने लगे।

एक हद के भीतर फुलावट नीति से व्यापार, व्यवसाय वाणिज्य और कारखानों पर अच्छा असर क्या होता है, विदेशी आयात पर बुरा असर क्या होता है इसकी चर्चा आगे करेंगे।

मौसिम के दिनो में फसल जब पकती है तब अक्सर बाजार में रुपए की टान होती है। उसकी वजह से व्यापारियो में दिक्कत न हो और रुपए की कमी की वजह से किसानो की जिन्स नीचे दामों में न बिक जाय, इस लिए बैंक ऐसी टान के समय में भी फुलावट करती है सही, पर यह थोडे समय के लिए और स्वल्प मात्रा में। तरीका उसका वही है जो व्यापार व्यवसाय की स्थायी उन्नति के लिए काम में लाया जाता है।

पर जो अस्थायी होता है उसमें सिक्के की कीमत नहीं बदली जाती। वहा तो केवल यही होता है कि नोट प्रसारक बैंक अत्यन्त सस्ते ब्याज पर लोगो को रुपए उधार देती है। मान लीजिए कि ब्याज इतना सस्ता कर दिया कि लोगो को रुपया उधार लेकर कारोबार में लगाने में

प्रयत लाभ प्रतीत होने लगा तो फिर चारों तरफ से धड़ाधड़ लोग रुपया उधार लेना शुरू करेंगे और नोट प्रसारक बैंक दूसरी बैंकों के जरिए रुपया उधार देना शुरू कर देगी। मान लीजिए इस तरह २५० करोड़ रुपए के नए नोट छाप कर बैंक ने उधार दे दिए तो चलन में २५० करोड़ रुपया और बढ़ गया।

और गिरावट पैदा करने के लिए ठीक इससे उल्टे उपायों का प्रयोग होता है—यानी या तो सरकार कर ज्यादा वसूल करती है और खर्च कम करती है या तो बैंक सूद ऊंचे ब्याज पर उधार लेकर बाजार से नोट खींच लेती है। दोनों ही के कारण चलन में से नोट निकल जाते हैं और चलन में गिरावट पैदा कर देते हैं। जहां फुलावट के कारण दाम चढ़ते हैं वहां गिरावट के कारण दाम गिरते हैं।

फुलावट या गिरावट के सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखने की है। आवश्यकतानुसार नोट चलन में महज बढ़ गये या घट गए केवल इसी लिए उस स्थिति को फुलावट और गिरावट की स्थिति नहीं कहना चाहिए। आवश्यकता से अधिक और सो भी थोड़े से सोने पर जब हद से बाहर नोटों का चलन बढ़ चले तो फुलावट, और पर्याप्त सोने पर आवश्यकता से कम नोटों का चलन हो जाय तो गिरावट की नीति कही जानी चाहिए। मसलन बैंक ने यह नियम कर रखा है कि १०० के नोट के चलन के पीछे ३० प्रतिशत सोना बैंक के कोष में रहेगा अब यदि सोने का अनुपात ३० से नीचे जाता है तो हम क्रमशः फुलावट की ओर और ऊपर जाता है तो गिरावट की ओर बढ़ रहे हैं।

विस्तार और संकोच

स्वभाव से और उचित परिमाण से आवश्यकतानुसार जो नोटों के चलन में कमी या बढ़ती हो उसे स्वाभाविक संकोच या विस्तार कहना चाहिए।

मान लीजिए देश में धन बढ़ा है, चीजों के दाम तेज हैं। विदेश के लोग हमारा माल धड़ाधड़ ले रहे हैं। हमने अपना माल बेच कर इस साल विदेशों से ५० करोड़ का सोना खरीदा। उसी के मद्दे १०० करोड़

के नोट चलण में रखे, हालांकि नियम के हिसाब से १५० करोड के भी नए नोट निकाल सकते थे। नए नोट, बिना सोने का कोष बनाए नहीं निकाले। इसके अलावा पहले जो सोना १२० करोड का और नोट ४०० करोड के थे अब वह सोना १७० करोड का और नोट ५०० करोड के हो गए। इस तरह कुछ सोना, जो पहले नोटों के अनुपात से ३० प्रतिशत था वह अब ३४ प्रतिशत हो गया। दूसरे यह सारा काम जरूरत के मुताबिक हुआ। देश की सम्पत्ति बढ रही थी दाम बढ रहे थे चलण में ज्यादा नोटों की जरूरत भी थी। इसलिए जो हुआ ठीक हुआ। यह स्वाभाविक विस्तार हुआ।

इसी तरह मान लीजिए देश में भयंकर अकाल पडा भूमिकम्प हुआ या प्लेग महामारी हुई। इसके कारण देश की सम्पत्ति इस साल कम हो गई। बाहर से माल मगाया ज्यादा और भेजा कम। इसलिए हमें २५ करोड सोना कुछ बाहर भेजना पडा। बैंक ने इस २५ करोड सोने के मद ५० करोड के नोट चलण में से निकाल लिए। इस हिसाब से अब नोटों का चलण ४०० करोड से घट कर ३५० करोड रह गया और सोना रह गया १२० करोड से घट कर कुल ९५ करोड जो नोटों की कुल कीमत का २७ प्रतिशत हुआ। पर चूकि यह सब सावधानी से आवश्यकतानुसार हुआ, और सोने का परिमाण भी ३० से गिर कर २७ प्रतिशत रह गया इसलिए इसे स्वाभाविक सकोच कह सकते है।

अर्थशास्त्री आमतौर से फुलावट या गिरावट इन दो ही परिभाषाओं का प्रयोग करते है। पर मेरा खयाल है कि यह यथार्थ नही है। सकोच और गिरावट में कुछ भेद तो है ही और इसी तरह विस्तार और फुलावट में भी भेद है। यह भेद अवश्य सूक्ष्म है पर इस भेद को मान लेना ही शायद ज्यादा शास्त्रीय है इसलिए मैने यह भेद मान कर फुलावट—विस्तार, और गिरावट—सकोच ऐसी अलग-अलग परिभाषाए रखी है। यह भेद इसलिए मान लिया है कि जहा फुलावट और गिरावट कृत्रिम उपायो से की जाती है और विशेष हेतु को लेकर की जाती है सकोच और विस्तार आवश्यकतानुसार स्वभावतया ही होते है। तो भी यह सही है कि यह भेद सूक्ष्म-सा ही है।

चूंकि फुलावट या गिरावट कृत्रिम उपायों से और विशेष हेतु से की जाती है इसलिए यह क्यों की जाती है और इसका क्या फल होता है यह समझना भी जरूरी है। पर इसी सिलसिले में एक और मत का उल्लेख आवश्यक है।

जिन्सों के दाम में घटा-बढ़ी के मोटे तौर पर दो कारण हो सकते हैं—एक तो उन जिन्सों से ही सम्बन्ध रखनेवाला, दूसरा उस द्रव्य से सम्बन्ध रखनेवाला जिसके द्वारा दाम सूचित किया जाता है जैसे नोट या धातु का सिक्का। एक चीज की कीमत कल दो पैसे थी आज तीन पैसे है। अर्थशास्त्री इसका कारण यों खोजेगा। हो सकता है कि पैसे के परिमाण में कोई अन्तर नहीं पड़ा है, पर वह चीज घट चली है—कल जितनी उपलब्ध थी आज उतनी नहीं है—और इस घटी के अनुपात में उसका दाम बढ़ गया है। और हो सकता है कि चीज के परिमाण में कोई अन्तर नहीं पड़ा है, पर पैसे का परिमाण बढ़ गया है, और इस वृद्धि के अनुपात में उस चीज का दाम बढ़ चला है।

यहां जो सवाल पैदा होता है वह यों रखा जा सकता है कि दाम बढ़ा वह चीज महंगी होने से या द्रव्य सस्ता होने से? अगर हम Value के अर्थ में मूल्य और Price के अर्थ में दाम शब्द व्यवहृत करें तो इसे यों रख सकते हैं कि उस वस्तु का अपना मूल्य चढ़ जाने से या द्रव्य का अपना मूल्य गिर जाने के कारण दाम बढ़ा?

वस्तुओं के मूल्य में घटा-बढ़ी के कारण ढूंढ़ निकालना कठिन प्रयास है। एक फसल मारी गई अनावृष्टि से, दूसरी बाढ़ या जल-बाहुल्य से, तीसरी टिड्डियों के आक्रमण से। तीनों चीजें कम हो गईं, उनकी मांग ज्यों की-त्यों बनी रही, फलतः उनका मूल्य बढ़ गया—अर्थात् उनके दामों में तेजी आ गई। सम्भव नहीं कि कोई भी ऐसा मत प्रतिपादित किया जा सके जो अनावृष्टि, बाढ़ और टिड्डियों का आक्रमण जैसे विभिन्न असम्बद्ध कारणों को एक घेरे में लाकर तज्जनित जटिलता को किसी भी हद तक सरलता में परिवर्तित कर सके। वास्तव में जहां तीन कारण दिए गए

है वहां तीन सौ तो क्या तीन हजार भी हो सकते हैं। किसी वस्तु के मूल्य में इस कारण भी वृद्धि हो सकती है कि लन्दन के 'टाइम्स' अखबार ने एक खास तरह की राय जाहिर कर दी—या राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने किसी पत्रकार के तत्सम्बन्धी प्रश्न को मजाक में उड़ा दिया—या किसी करोड़पति ने स्वप्न देखा कि वह उस वस्तु के ढेर पर बैठा हुआ आसमान की ओर उठता जा रहा है। जहां दाम में घटा बढ़ी किसी वस्तु के मूल्य में घटा बढ़ी का प्रतिबिम्ब है वहां इस घटा बढ़ी पर कोई सूत्रात्मक मत या नियम प्रकाश नहीं डाल सकता—जिज्ञासु को प्रत्येक कारण का अलग अन्वेषण और उसकी अलग व्याख्या करनी पड़ेगी।

द्रव्य-परिमाण-मत

द्रव्य अर्थात रुपए पैसे के मूल्य में घटा-बढ़ी के कारण न तो इतने अधिक हैं न इतने विभिन्न। इसलिए इनके सम्बन्ध में Ricardo नामक अर्थशास्त्री के समय से एक ऐसा उपयोगी मत चला आता है और उसका नाम है द्रव्य परिमाण मत (Quantity Theory of Money)। जितने भी दाम होंगे द्रव्य के ही रूप में होंगे। इसलिए द्रव्य के रूप में वृद्धि या ह्रास के जो भी कारण होंगे वे दामों के प्रसंग में सर्वत्र लागू होंगे। इस मत का निचोड़ यह है—

द्रव्य के मूल्य में घटा बढ़ी का दामों पर उल्टा असर होता है और ये उसी अनुपात से तेज या मन्दे हो जाते हैं। मान लीजिए कि किसी वस्तु का दाम होता है ४ ग्रेन सोना। अगर सोने का मूल्य घट कर आधा हो जाय तो उस चीज का दाम ४ ग्रेन की जगह ८ ग्रेन सोना हो जायगा।

अब यह देखना है कि द्रव्य के मूल्य में घटा-बढ़ी होती क्यों है। इसके चार कारण हो सकते हैं—

(१) द्रव्य के परिमाण का घटना-बढ़ना। सोना या चांदी खानों से ज्यादा निकली तो उसका मूल्य कम हो गया—कम निकली तो उसका मूल्य बढ़ गया। अगर सिक्के सोना चांदी के हैं तो उनके मूल्य में भी ऐसी ही घटा बढ़ी होगी और चीजों के दाम में—उसी हिसाब से—फर्क पड़ेगा। अगर चलन में सोना चांदी के सिक्कों की जगह कागजी नोट

है और इनका परिमाण बढ़ता घटता है तो इनके मूल्य में भी उसी प्रकार अन्तर पड़ेगा और चीजों के दाम उसी प्रकार तेज या मन्दे होंगे।

(२) हो सकता है कि द्रव्य का परिमाण ज्यों का-त्यों बना हुआ है पर उसके चलन या रफ्तार में कुछ खास कारण या कारणों से तेजी आ गई। इस तेजी का असर वही होगा जो उस द्रव्य का परिमाण बढ़ने का होता। कारण यह कि रफ्तार में तेजी के माने हैं उतने ही द्रव्य का ज्यादा चक्कर लगाना अर्थात् द्रव्य के परिमाण का बढ़ सा जाना। अगर चलन या रफ्तार धीमी हो गई तो इसका असर उल्टा पड़ेगा क्योंकि इसका अर्थ होगा द्रव्य के परिमाण का घट सा जाना। जब कोई रुपए को अपने पास रखना नहीं चाहता तब दाम चढ़ते हैं जब लोग रुपए को दबाकर बैठ जाते हैं तब दाम गिरते हैं।

(३) द्रव्य की मांग अवस्था विशेष में इस कारण कम हो जाती है कि लोग भुगतान के लिए चेक या हुण्डी-पुरजे का अधिकाधिक व्यवहार करने लगते हैं। ऐसी अवस्था में दाम गिरते नहीं, ऊपर चढ़ते हैं क्योंकि द्रव्य की मांग कम हो गई द्रव्य का मूल्य गिर गया, चीजों के दामों में तेजी आ गई। चेक और हुण्डी भी तो आखिर द्रव्य के ही प्रतीक हैं। उनकी संख्या बढ़ गई तो एक प्रकार से वह द्रव्य ही बढ़ गया क्योंकि यदि चेक हुण्डी न होती तो उनके स्थान की पूर्ति नोटों को करनी पड़ती। इसलिए इस पहलू को यों भी बताया जा सकता है कि द्रव्य परिमाण बढ़ गया इसलिए द्रव्य के दाम गिर गए, और चीजों के दाम चढ़ गए।

(४) मगर इसके विपरीत यह भी हो सकता है कि वाणिज्य-व्यापार या लेन देन की वृद्धि के कारण द्रव्य की मांग बढ़ जाय। मांग की पूर्ति न की जाय और चलन में द्रव्य न बढ़ाया जाय तो स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था में द्रव्य का मूल्य बढ़ेगा—अर्थात् चीजों के दाम गिरेंगे।

द्रव्य के मूल्य में घटा बढ़ी के कारणों को समझाने के लिए ऊपर यह मान लिया है कि जहां एक बात बदलती है वहां और सब बातें समान बनी रहती हैं। पर प्रकृत जीवन में ऐसी अवस्था बहुत कम मिलती है। एक नहीं अनेक बातें प्राय साथ-ही-साथ बदलती रहती हैं और परस्पर विरोधी शक्तियों की मुठभेड़-सी बनी रहती है। घटा बढ़ी का जो

कारण बताया गया है उस पर फिर एक नजर डालिए। लिखा है कि द्रव्य की मांग-बढ़ने से उसका मूल्य बढ़ेगा और चीजों के दाम गिरेंगे। मगर सम्भव है कि जहां एक ओर द्रव्य की मांग बढ़े वहां दूसरी ओर साथ ही साथ उसका परिमाण भी इतना बढ़ जाय कि उसके मूल्य में किसी प्रकार की वृद्धि न हो और दामों पर कोई असर न पड़े। वास्तव में वस्तु स्थिति कभी कभी इतनी जटिल होती है कि उसका पूरा विश्लेषण करना और यह जान लेना कि वह कौन-कौन से कारणों के फलस्वरूप बनी है अत्यन्त कठिन कार्य हो जाता है। पर जटिल-से जटिल अवस्था में भी द्रव्य के मूल्य में घटा बढ़ी उपरोक्त कारणों से ही होती है—चाहे उनमें से एक मौजूद हो चाहे एक से अधिक। मांग बढ़ेगी या परिमाण कम होगा तो उसके मूल्य में वृद्धि होगी। मांग घटेगी या परिमाण बढ़ेगा तो मूल्य में ह्रास होगा। यह सरल या जटिल प्रत्येक अवस्था के लिए सत्य है।

उपरोक्त विश्लेषण को सामने रख कर ही हम 'द्रव्य परिमाण मत' के शुद्ध स्वरूप को समझ सकते हैं जो यह है कि सिक्का—चाहे वह स्वयं सिद्ध मुद्रा हो चाहे प्रतीक मुद्रा—जब चलण में ज्यादा होता है तो जिन्सों के दाम—बढ़ चलण के अनुपात से—बढ़ जाते हैं और सिक्का चलण में कम होता है तो जितना कम होता है उसी अनुपात से जिन्सों के दाम गिरते हैं।

यह बात सहज ही समझ में आ सकती है। मान लीजिए कि अचानक सोने की नई खानें निकल आई और सोने की पैदाइश बेहद बढ़ चली। उसके कारण सोने के दाम गिर गए, यहां तक कि सोने के दाम पहले से आधे हो गए—तो स्वभावतया ही, यदि हम विदेशों में खरीद से ज्यादा माल बेचते रहे हैं तो बदले में पहले जितना सोना खरीदते थे उसके बजाय उतने ही माल के लिए दुगुना सोना हमें मिल सकेगा। सोना दुगुना मिलेगा उस पर फिर नोट भी ज्यादा चलण में चलेंगे। जैसे पहले यदि १० करोड़ का नया सोना हम हर साल खरीदते थे और उसके मद्दे ३० करोड़ के नए नोट चलण में रखते थे तो अब उतने ही माल के बदले में विदेशों में हमें १० करोड़ के बजाय (क्योंकि सोने के दाम आधे हो गए) २० करोड़ का सोना मिलेगा जिसके मद्दे हम आसानी से ६० करोड़ के नए नोट

चलन में रख सकेंगे। नए नोट चलन में आने से ब्याज गिरेगा, नाणा मन्दा होगा और बहुतायत से उधार मिल सकेगा। कोई भी चीज कम होती है तो वह महंगी हो जाती है, ज्यादा होती है तो सस्ती होती है। चूंकि नाणा ज्यादा हो गया इसलिए नाणा सस्ता हो गया। नाणा सस्ता हो गया, इसके मानी दूसरे शब्दों में यह हुए कि चीजें महंगी हो गईं। दर असल जब हम कोई चीज खरीदते हैं तो उस चीज का नाणे के साथ तबादला मात्र होता है। यानी नाणा हम बेचते हैं और चीज खरीदते हैं। जब नाणा सस्ता होता है तो सस्ते में बिकेगा—यानी किसी के साथ नाणे की अदला-बदली में, यदि नाणा सस्ता है तो हमें नाणा ज्यादा देना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि चीजों के दाम महंगे हो गए।

जब नोट चलन में बढ़ जाते हैं तो नाणा आसानी और सहूलियत से और बहुतायत में कम ब्याज पर मिलने लगता है। ऐसी हालत में लोगों को अपना व्यवसाय बढ़ाने की फिक्र होती है। नए कारोबार में रुपया लगाने में किसी को हिचकिचाहट नहीं होती। नतीजा यह होता है कि व्यापार पनपता है, हर चीज के दाम बढ़ते हैं। पर इस मत के पूर्णतया सिद्ध होने की कई एक शर्तें हैं। एक शर्त तो यह है कि द्रव्य का चलन बढ़ा—चाहे नोटों का या सिक्कों का—उतना ही यदि व्यापार और लेन देन भी बढ़ गया तो फिर दाम नहीं बढ़ेंगे। दाम तो तभी बढ़ेंगे जब कि चलन अपेक्षाकृत बढ़ गया हो—अर्थात् यदि व्यापार बढ़ा है रुपए में एक आना और चलन बढ़ गया रुपए में दो आना, तभी नाणा सस्ता है ऐसा हम कहेंगे। ऐसी हालत में रुपए की छूट होगी और इसके कारण चीजों के दाम बढ़ेंगे।

इसके विपरीत यदि व्यापार या लेन देन की जरूरत बढ़ी रुपए में एक आना और चलन बढ़ा पौन आना ही, तो यह कहा जायगा कि अपेक्षाकृत चलन में संकोच हुआ है और इसलिए चीजों के दाम सुकाव की ओर होंगे। असल में तो इस मत की सिद्धि के लिए हमें यह शर्त लगानी होगी कि यदि सब तुलनात्मक स्थितियां हर बात में बिल्कुल यकसां हैं तो फिर यह सिद्धान्त संक्षेप कहा जा सकता है कि द्रव्य परिमाण (नोट या सिक्कों का चलन) बढ़ने पर जितना परिमाण बढ़ा उसी अनुपात में चीजों के दाम बढ़ेंगे और नाणा सस्ता होगा। और द्रव्य परिमाण घटने पर, जितना परिमाण

घटा उसी अनुपान से चीजो के भाव गिरेंग।

द्रव्य की पगुता •

यहा फुलावट और गिरावट के सम्बन्ध में हम एक बात कहनी है जो जाहिरा तौर पर अबतक जो कुछ कहा जा चुका है उसके विपरीत जान पडती है। हर हालत म फुलावट और गिरावट के नतीज वही नही हात जो ऊपर बताये जा चुके है। सभव है फुलावट होते हुए भी दाम समानसे बने रहे या उनमें तेजी भी आय तो नाममात्र की। और सभव है, गिरावट होते हुए भी जिन्सो के दाम चढ जाय। आप कह सकते है कि यह खूब रही? और अगर यह सच है तो इससे तो द्रव्य परिमाण मत का खोखला पन ही साबित हुआ। आप दोनो बातो का सामञ्जस्य कैसे करते है?

फुलावट होते हुए भी अगर लोगो के खर्च करने का वेग उस हिसाब से नही बढता और द्रव्य या पैसा पगु सा हो कर बैठा या पडा रहता है तब दामो म उतनी तेजी नही आ सकती जितनी फुलावट को देखते हुए सभव जान पडती है। इस महासमर म इंग्लैण्ड की बात लीजिए। वहा फुलावट काफी हो चुकी है पर उस अनुपात म दाम नही बढ पाये है। कारण यह है कि लोग मौजूदा हालत में मनोवाञ्छित रीति से जिन्स नही खरीद सकते। उनके पास पैसा अधिक है उनकी क्रयशक्ति बढ गई है पर वह पैसा तरह-तरह के नियन्त्रणों के कारण निष्क्रिय सा पडा हुआ है। सरकार को लडाई के लिए हर तरह की जिन्स की जरूरत है—और सख्त जरूरत है। अगर बाजार में उन जिन्सो को खरीदते समय सरकार को सर्वसाधारण की प्रतियोगिता का सामना करना पडे, तो उसकी समस्या बडी जटिल हो जाय, और लडाई के लिए जैसी तयारी होना चाहिए, न हो सके। उस प्रतियोगिता को सरकार ने विभिन्न उपायो से बहुत कुछ रोक दिया है। इस कारण लोगो की क्रय शक्ति अशक्त सी हो गई है—उनके पास पैसा अधिकाधिक होते हुए भी वह उस एक हद से आगे खर्च करने म असमर्थ है। फिर दाम फुलावट के हिसाब से बढे तो कैसे?

मान लीजिए कि लडाई बन्द होते ही सरकार की नीति फुलावट से गिरावट की हो गई तो क्या दाम गिरने लगेंगे? आज आय-वृद्धि होते हुए

भी व्यय करने के मार्ग बन्द हैं, इसलिए उस पैसे का दामों पर जो असर पड़ सकता था वह नहीं पड़ रहा है। पर, कल अगर यह मार्ग खुल गए और लोग मनमाना खर्च करने के लिए स्वतन्त्र हो गए तो गिरावट के बावजूद भी जिन्सों के दामों में बेहद तेजी आ सकती है।

सारांश यह कि दामों की दृष्टि से प्रधानता इस प्रश्न की है कि कितना पैसा खर्च हो रहा है — न कि इस प्रश्न की कि कितना पैसा मौजूद है। साधारण समय में यह भेद कोई खास अर्थ नहीं रखता क्योंकि लोग अपने पैसे को मनमानी रीति से खर्च करने के लिए स्वतन्त्र रहते हैं। पर इस महासमर जैसे असाधारण समय में — जबकि पैसा होना एक बात है, उसे मनमानी रीति से खर्च करने की स्वतन्त्रता होना दूसरी बात — यह भेद विशेष महत्त्वपूर्ण है। फिर भी यह बात कोई ऐसी नहीं, जिसका द्रव्य-परिमाण-मत से मेल या सामञ्जस्य न हो सके। वास्तव में यह उसी मत के अन्तर्गत है, क्योंकि यह द्रव्य के परिमाण पर ही नहीं उसके चलन या रफ्तार पर भी जोर देता है। हम अपने शब्दों को दोहराते हैं — 'जब कोई रुपए को अपने पास रखना नहीं चाहता तब दाम चढ़ते हैं, जब लोग रुपए को दबा कर बैठ जाते हैं तब दाम गिरते हैं।' इस समय रुपया अधिक होते हुए भी दबा हुआ है, इसलिए दाम जितने ऊंचे हो सकते थे नहीं हैं।

पर चलण के स्वाभाविक विस्तार और सकोच से जो असर चीजो के दामो पर पडता है उससे कही अधिक जोरदार असर चीजो के दामो पर चलण की फुलावट और गिरावट के कारण पडता है। चूंकि विस्तार या सकोच तो अपने आप करीब करीब स्वभाव से ही होता है इसका गति भी मन्द होती है और इसका असर भी सहज और मृदु होता है।

पर चूंकि फुलावट और गिरावट जान बूझ कर की जाती है इसकी गति द्रुत होती है। इसलिए जितनी ही कस कर फुलावट या गिरावट की नीति काम मे लाई जाय उतना ही अधिक तात्कालिक असर इस नीति का जिन्सो की कीमत पर होगा। और खास कर फुलावट की नीति मे तो— यदि अत्यधिक अपरिमाण, फुलावट की जाय तो—लोगो का नोटो से विश्वास इस कदर भाग जाता है कि वे नोटो को एक रात भी अपने पास रखना नापसन्द करते है और अपनी पूंजी पल्ला जिन्सो मे ही रोकना पसन्द करते है। इसका नतीजा यह होता है कि चीजो के दाम अनाप शनाप बढ जाते है। और ब्याज की दर भी बढने लगती है।

लडाई के बाद जर्मन मार्क और रूसी रूबल के चलण की फुलावट यहा तक बढी की साधारण समय मे जितने नोट चलण मे थे उससे कई लाख गुने नोट चलण मे रख दिए गए। नतीजा यह हुआ कि नोट कागज के टुकडो की तरह इतना सस्ता हो गया कि उसकी कोई कीमत ही नही रह गई और जर्मनी में जिस चीज के दाम साधारण समय मे १ २ मार्क रहे होगे उसके दाम लाखो मार्क तक हो गए। ज्यो ज्यो मार्क छप छप कर जोर से चलण में आने लगे त्यो त्यो बडी तेजी के साथ चीजो के दाम बढने लगे—यहा तक कि हर मिनिट दाम ऊंचे जाने लगे। कहा जाता है कि जब एक नानबाई अपने ग्राहक को रोटी बेचकर उसके मार्क पाता था तो उसे यह चिन्ता होती थी कि ताजा रोटी बनाने के लिए आटा खरीदते खरीदते कही आटे के दाम बढ न जाय। इसलिए वह रोटी बेचते ही मार्क लेकर बेतहाशा दौड कर आटेवाले की दुकान पर पहुच कर आटा ले लेता था और मार्क से पिंड छूटने पर ही शान्ति से सांस लेता था।

नोट फुलावट के नतीजे

उस जमाने की इससे भी ज्यादा मजेदार कई सच्ची कहानियां प्रचलित हैं। जब मार्क की कीमत कौड़ी से भी कम होने जा रही थी, तब तो ऑस्ट्रिया और जर्मनी के लोगों का विश्वास इस बुरी तरह डुल गया कि कई लोगों ने तो अपनी कफन काठी भी मरने के पहले खरीद कर रख दी ताकि बाद में कहीं दाम बेशुमार ज्यादा न बढ़ जाय!

एक प्रतिष्ठित भारतीय कोठी का कुछ मार्क एक जर्मन व्यापारी से पावना था। वह मार्क हजारों की तादाद में था जिसकी साधारण समय में हजारों रुपए कीमत थी। भारतीय कोठी ने जब जर्मन व्यापारी से रुपया मांगा और लिखा कि आप हमारे मार्क भेज दीजिए तो जर्मन व्यापारी ने जवाब लिखा कि महाशय आपके २५,००० मार्क पावने थे, पर मैं जो यह खत आपको लिख रहा हूं उसके टिकिट और लिफाफे के दाम ही तो ढाई लाख मार्क हो जायेंगे। इस हिसाब से यदि मैं हिसाब लगाऊं तो उल्टा मेरा ही आप में पावना निकलेगा।

कहते हैं आस्ट्रिया में दो भाई थे जिनमें से एक के पास २०-३० हजार क्राउन थे जिसके कारण वह सम्पन्न माना जाता था। और दूसरा शराबी था, जो नित्य जितना कमाता था उसका एक बड़ा हिस्सा शराब में बरबाद कर देता था और शराब की बोतलें घर में जमा रखता था। जब क्राउन की फुलावट हुई तब जो भाई सम्पन्न था उसके क्राउन तो कौड़ी के हो गए पर जो शराबी था उसकी खाली बोतलों की कीमत लाखों क्राउन हो गई! नोट की फुलावट क्या क्या करामात दिखाती है इसका यह एक मजेदार उदाहरण है। परन्तु।

मान लीजिए कि हमारे यहां २१० करोड़ रुपए के नोटों का चलन है उसे बढ़ा कर २४,००० करोड़ के नोटों का कुल चलन कर दिया जाय— अर्थात् सौगुना चलन बढ़ा दिया जाय, तो स्वभावतया रुपए की साख सौवां हिस्सा रह जायगी। और जो मेथी की भाजी आज दो पैसे सेर मिलती है उसका दाम २०० पैसे सेर, अर्थात् एक सेर मेथी की कीमत करीब-करीब ३ रुपए हो जायगी।

ऊपर हमने बताया है कि नाणा चलन में ज्वार होता है तो चीजों

दाम पनपने लगते हैं और सस्ते ब्याज में उधार मिलने लगता है। पर यह सस्ते ब्याज की बात केवल नियंत्रित विस्तार तक ही सीमित है—अर्थात व्यापार को पनपाने के लिए या केवल मौसिमी टान को मिटाने के लिए ही जब हम चलण में सिक्का ज्यादा डालते हैं, और मात्रा भी नियंत्रण के के साथ स्वल्प मात्रा में तभी तक ब्याज सस्ता रहता है। पर जहां फुलावट की नीति जोर से शुरू की और चलण में लोगों का विश्वास कंपित हुआ कि ब्याज की दर जोर से बढ़ने लगती है।

जर्मनी में फुलावट के जमाने में चीजों के दाम कैसे बढ़ गए, इसका उदाहरण हमने ऊपर दिया है। उस जमाने में ब्याज की दर भी यहां तक बढ़ी थी कि एक जमाने में ब्याज १२०० प्रतिशत था। १०० सिक्के का ब्याज एक साल का १२०० रुपया हो गया। आपने यदि कुल १०० सिक्के उधार लिए तो एक साल के बाद आपको अपने देनदार से १२०० सिक्के ब्याज के मिल गए। ऐसी विषम स्थिति हो गई थी।

यह कुछ अनहोनी सी बात लगती है कि इतनी ऊंची ब्याज की दर हो सकती है—और सो भी एक सुसभ्य देश में। कानूला ब्याज बड़ा होता है। पठान लोग गरीबों को अत्यंत ऊंचे ब्याज पर उधार देते हैं। पर यह १२०० प्रतिशत का ब्याज तो काबुलियों से भी बाजी मारता है। पर उस समय की परिस्थिति को देखते हुए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

जैसा कि हमने पहले बताया है जब फुलावट नीति ओर से शुरू होती है तो चलण का मूल्य धड़ाधड़ गिरने लगता है। मान लीजिए जिस चलण का मूल्य आज एक मात्रा है उसका मूल्य एक साल में शतांश रह गया और भय यह हो कि शायद महीने बीस दिन के बाद $\frac{1}{2}$ रह जाय या इससे भी कम हो जाय तो फिर चलण अपने पास कोई नहीं रखेगा। इसलिए जिस नानबाई का हमने उदाहरण दिया है वह बेतहाशा दौड़ कर मार का आटा खरीद कर ही दम लेता था। ऐसी जहां हालत हो वहां फिर चलण को अपने पास कौन रखे? जिसने उधार दिया वह तो मारा गया क्योंकि साल भर के लिए यदि किसी ने १०० मार्क उधार लिए और मार्क के दाम गिर कर साल भर में $\frac{1}{2}$ रह जाय तो जो मार्क उसे वापिस मिलेंगे वे सौ के बजाय आधे मार्क का ही काम देंगे। इसके माने यह हुए कि

यद्यपि उसे वापिस १०० मूल रकम और १२०० ब्याज के कुल १३०० मार्क मिले, पर १३०० की कीमत $\frac{1}{200}$ के हिसाब से $\frac{1300}{1} \times \frac{1}{200} = ६\frac{1}{2}$ मार्क ही कुल रह गई। इतना ब्याज पाने पर भी कर्ज देनेवाला घाटे में ही रहा। यही कारण है कि इस तरह की फुलावट की नीति के जमाने में नाणा प्रचुर मात्रा में होते हुए भी ब्याज की दर बेहद बढ़ जाती है क्योंकि उधार देनेवाले को बड़ी जोखिम उठानी पड़ती है।

फुलावट का कर्ज पर असर

फुलावट में प्रतीक की साख में ठेस पहुंच गई और प्रतीक की मिकदार चलण में ज्यादा हो गई। इसलिए जैसा कि पहले बता चुके हैं जिन्सों के दाम भी बढ़ गए। पर किसी कर्जदार को एक सौ का देना था और पावनदार का उतना ही पावना था तो—यद्यपि जब दोनों का लेन देन हुआ था तब प्रतीक स्वयंसिद्ध मुद्रा का सच्चा प्रतिनिधि रहा हो—आज प्रतीक स्वयंसिद्ध मुद्रा का प्रतिनिधित्व खो बैठा तब भी पावनदार को वही सौ मिलेंगे, और देनेवाले को वही सौ देने पड़ेंगे। फुलावट के कारण प्रतीक की करामात कम हो गई इससे लेन-देन की निर्धारित रकम पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

पहले जो एक रुपया दस सेर गेहूं खरीद सकता था, अब फुलावट के कारण रुपए की साख गिर गई और जिन्सों के दाम बढ़ गए इसलिए चाहे दस सेर गेहूं के बदले ८ सेर ही खरीद सकें पर पावनदार देनदार से यह नहीं कह सकता, 'भाई साहब—मैंने जब आपको उधार दिया तब रुपए की साख सोलह कला संपूर्ण थी। प्रतीक के स्वामी को बैंकवाले आठों पहर ठोस स्वयंसिद्ध मुद्रा देते थे। अब वह बात नहीं रही। फुलावट की नीति के कारण प्रतीक हतश्री हो गया। इसकी कलाएं घट गई। १० सेर गेहूं के बजाय अब इसके बदले में ८ सेर गेहूं ही मिल सकते हैं। इसलिए मेरा रुपया जो पहले सोलह कलावाला था उसीको लौटाने की आपकी जिम्मेवारी है। इसलिए आप या तो मुझे स्वयंसिद्ध मुद्रा का प्रतीक लौटाइए, और यदि आप मुझे घटे दाम का रुपया लौटाना चाहते हैं तो सौ के ऋण के बजाय आपको सवा सौ देना होगा।' यदि पावनेदार

एसी बात कहे तो देनदार अवश्य ही कहेगा, "तुम कहा आकाश पाताल की बातें कर रहे हो ? मालूम होता है तुम्हारे दिमाग की कोई कील गिर भागी है इसलिए बहतर है कि तुम अपनी चिकित्सा कराओ।

लाभ और हानि

पर बावजूद इस प्रश्नोत्तरी के यह तो मानना ही पड़ेगा कि इस फुलावट की नीति के कारण पावनदार को घाटा हुआ और देनदार को लाभ, क्योंकि पावनदार का जो पावना था वह था पूणकला रुपया या सुवर्ण मुद्रा और अब वापिस मिल रहा है उसे घटी कीमत का प्रतीक, जो पुराने रुपए की अपेक्षा कम जिन्स खरीद सकता है। पर चूंकि कानून का यह तकाजा है कि फुलावट या गिरावट के कारण प्रतीक की कीमत में चाहे जो घटा बढ़ी हो (उस घटा बढ़ी का निश्चित रूपेण मापन का कोई साधन नहीं है और यदि हो भी तो वह सरकार को मान्य नहीं है) उससे पावनदार या देनदार के पावन देन की रकम पर कोई असर नहीं होगा—अर्थात यदि स्वयसिद्ध मुद्रा के चलण के समय का १०० का पावना देना है तो वह फुलावट-नीति के समय भी १०० का ही पावना देना माना जायगा।

करोड़ों का देना पावना हर मुल्क में होता है और उस देन-पावन की रकम ज्यों-की-त्यों बनी रहती है इसलिए सवसाधारण को प्रतीक की कीमत गिर गई है या बढ़ गई है इसका थोड़ी घटा-बढ़ी में कोई पता भी नहीं चलता। पर पता न भी रहे तो भी उसके असर से लोग वंचित नहीं रहते। यदि दाम चढ़ते हैं तो सभी को उसका फल भुगतना पड़ता है और गिरते हैं तब भी यह सभी को लागू पड़ता है।

एक सावधान और सम्पन्न व्यक्ति आस्ट्रिया में कैसे दरिद्र हो गया और उसका भाई जो शराबी था कैसे धनिक बन गया इसका उदाहरण हम पहले दे आये हैं। यद्यपि फुलावट के कारण प्रतीक मुद्रा की दर कितनी गिर गई है इसका माप तौल का सवसाधारण को पूरा पता नहीं चलता पर जाननेवाले तो जानते ही हैं कि फुलावट के कारण प्रतीक की कीमत कम हो जाती है और इसके फलस्वरूप पावनदार या नकद रुपया रखनेवाले को जिन्सों की खपत करनेवाले को मजदूरपेशा लोगों

को, और जिनकी आय निर्धारित है उनको (जैसे जमींदार पेन्शनयाफ्ता लोग, नौकरीपेशा लोग, कर वसूल करनेवाली संस्थाएं—जैसे सरकार, म्युनिसिपलिटी, कालेज, स्कूल इत्यादि) हानि होती है, और कर्जदार लोग, कारखानेवाले, माल पैदा करनेवाले, (जैसे किसान, जुलाहा बढ़ई, लोहार, चमार आदि) इन लोगों को लाभ होता है।

गिरावट की नीति में जिन्हें फुलावट में लाभ होता है उनको हानि है और फुलावट में जिन्हें नुकसान है, उनको लाभ है।

६

इस फुलावट या गिरावट के कारण हमारी मुद्रा की कीमत पर किन्ना म क्या असर होता है, इसका भी जरा विवेचन कर लें।

हमने पहले बताया है कि प्रतीक मुद्रा तो स्वयसिद्ध मुद्रा की प्रतिनिधि मात्र है—अर्थात एक सुवर्ण मुद्रा की कीमत का प्रतीक हम नोट प्रसारक बैंक के पास पेश करें तो हम एक सुवर्ण मुद्रा पाने के अधिकारी होंगे और बैंक एक सुवर्ण मुद्रा देने के लिए बाध्य होगी। पर यह अधिकार और जिम्मेदारी दोनों-के-दोनों फुलावट नीति के प्रवेश करते ही समाप्त हो जाते हैं और गिरावट नीति के आने पर दोनों और भी सुरक्षित बन जाते हैं।

कारण स्पष्ट है। थोड़े से सोने की पूंजी पर एक तरफ तो अधिक और अपरिमाण प्रतीक चलण में डाल दिए जाएं और दूसरी तरफ प्रतीक के स्वामी का प्रतीक के बदले में स्वयसिद्ध मुद्रा पाने का अधिकार अक्षुण्ण बना रहे और बैंक प्रतीक मुद्रा के बदले में सुवर्ण मुद्रा देने के लिए बाध्य हो—ये दोनों बातें असंगत हैं, क्योंकि १२० करोड़ की कीमत के सोने के आधार पर यदि ३२०० करोड़ के नोट चलण में डाल दिए जायें और उनमें से यदि २०० करोड़ की कीमत के नोटवाले भी अपने अधिकार का उपयोग करें और बैंक से नोट भुना कर सुवर्ण मुद्रा मांगें तो बैंक को अपना दरवाजा बन्द करने के सिवा कोई चारा न होगा। कुल पूंजी ही यदि १२० करोड़ है तो फिर २०० करोड़ के नोटों का भुगतान बैंक चुका ही कैसे सकती है? ज्यादा से ज्यादा—३२०० करोड़ के नोटों में से—कुल १२० करोड़ ही तो चुका सकती है। बाकी के नोटों के पीछे जब कोष में सोना ही नहीं रहता तो फिर नोटों की पुश्ती भी नस्तनाबूद हो जाती है और इसलिए नोटों के साथ शून्यवत रह जाती है। इसलिए जहां फुलावट नीति के प्रयोग का विचार हुआ कि प्रतीक मुद्रा के स्वामी का सुवर्ण मुद्रा पाने का अधिकार समाप्त हुआ।

गिरावट की नीति में, इसके विपरीत यह अधिकार और भी ठोस बन

जाता है, क्योंकि चलन के नोटों के परिमाण के मुकाबले में वस्तु के बाप में स्थित मान का परिमाण और भी कम जाता है। इसलिए स्वभावतया प्रतीक मुद्रा की साख घट जाती है। पर फुलावट-नीति में तो प्रतीक नाममात्र का प्रतीक रहता है। पहले प्रतीक की कीमत जो एक सुवर्ण मुद्रा थी, फुलावट होने पर अब उसकी कोई निश्चित कीमत नहीं रही। अब प्रतीक की कीमत उसकी साख की घटा-बढ़ी के अनुसार घटती और बढ़ती रहती है। और वह साख फुलावट के परिमाण के पीछे कमी बेशी होती रहती है। यदि फुलावट ज्यादा होती है तो जैसाकि ऊपर बताया है प्रतीक की कीमत ज्यादा गिर जाती है और यदि फुलावट अपेक्षाकृत कम होती है तो प्रतीक की कीमत कम गिरती है।

जब तक प्रतीक और स्वयंसिद्ध मुद्रा का बाकायदा सम्बन्ध था, दोनों गठजोड़-से बंधे थे, तब तक तो प्रतीक की निर्धारित कीमत कायम थी। पर जहां प्रतीक और स्वयंसिद्ध मुद्रा का तलाक हुआ कि कीमत की स्थिरता गायब हुई। यद्यपि कहने के लिए तो प्रतीक फिर भी एक सुवर्ण मुद्रा का नोट ही होगा जैसा कि इंगलैण्ड में एक पाउण्ड का नोट आज भी एक पाउण्ड का नोट ही कहलाता है पर उसके मानी यह नहीं कि उसके पीछे एक पाउण्ड की सुवर्ण मुद्रा पड़ी है, जिसे हम चाहे जब बैंक आफ इंगलैण्ड से मांग लेंगे और वह हमें दे देगी। इस तलाक के बाद असल में तो प्रतीक की कीमत कटी पतंग की तरह हो जाती है और जैसे हवा के झोकों के बल पर पतंग गिरती है या उठती है उसी तरह प्रतीक की कीमत भी चलन की फुलावट की कमी-बेशी के आधार पर हिलोरे खाता रहती है।

प्रतीक की कीमत और विदेशी बाजार

यह सही है कि सर्वसाधारण को फुलावट या गिरावट के कारण प्रतीक की दर में क्या घटा-बढ़ी हुई इसका कोई पता नहीं चलता क्योंकि उनकी नजरों के सामने तो सिवा जिन्सों की कीमत की घटा-बढ़ी के और कोई ऐसे लक्षण नहीं आते जिनसे उन्हें प्रतीक की नई कीमत का प्रत्यक्ष ज्ञान हो। उनके सामने रुपए की वही पहलेवाली शक्ल है वही दस्तखत वही रकम है वही रुपए का नाम है।

पर विदेश में लोग हमारे प्रतीक की कीमत के सम्बन्ध में इतने अन्धकार में नहीं रहते। उन्हें हमारे प्रतीक की कीमत का और उसमें रोज होनेवाली घटा-बढ़ी की करीब करीब सही माप-तौल मिल जाता है और इसलिए जैसे मनुष्य अपने चेहरे को स्वयं नहीं देख सकता किन्तु दर्पण की सहायता से अपने मुँह की बदसूरती या सुन्दरता को सही माप-तौल कर सकता है उसी तरह हमारे प्रतीक का विदेशी लोग क्या दर-दाम करते हैं, इससे उसकी कीमत का अधिक सही ज्ञान हम पा सकते हैं। विदेशी बाजार एक तरह दर्पण का काम देते हैं, क्योंकि उन्हीं के द्वारा हम अपने प्रतीक की सही कीमत का पता लगाते हैं।

पर विदेशी बाजार हमारे दर्पण क्यों बन जाते हैं? यदि विदेशों से हम माल न तो खरीदें और न उन्हें बेचें, तब तो किसको फुरसत है कि हमारे चलण की क्या कीमत होनी चाहिए इसपर कोई विदेशी बहस करने बैठेगा। पर चूँकि हम विदेशों में जिन्स माल लेते हैं और बेचते हैं इसलिए हमारे चलणी प्रतीक की कीमत को हर समय कूतते रहना उनके लिए अनिवार्य हो जाता है। यह क्या?

मान लीजिए आप लन्दन के बाजार में कुछ चीजें मोल लेते हैं तो उनका दाम आप यदि भारतीय नोटों में चुकाना चाहेंगे तो कोई दूकानदार आपको माल न बेचेगा इसलिए आपको वह दाम अंग्रेजी नोटों में चुकाना पड़ता है। अंग्रेजी नोट आप कहाँ से लाते हैं? आपके घरवाले हिन्दुस्तान में किसी विदेशी बैंक को रुपया देते हैं और उसकी कीमत का अंग्रेजी द्रव्य खरीद कर आपको उसी बैंक की मार्फत भेज देते हैं जो आपको अंग्रेजी नोट या सिक्का की शक्ल में मिल जाता है। पर इसी तरह यदि सब लोग यहाँ से इंग्लैण्ड भेजनेवाले ही होंगे और मँगानेवाला कोई न रहेगा तब तो कारोबार अपने आप कुछ दिन के बाद बन्द हो जायगा। पर चूँकि जैसे भेजने वाले हैं वैसे ही लन्दन से द्रव्य मँगानेवाले भी हैं इसीलिए यह दुतरफा कारोबार चलता रहता है और जब हम रुपए से अंग्रेजी पाउण्ड खरीदते हैं (लन्दन धन भेजने के लिए) या तो पाउण्ड बेच कर रुपया खरीदते हैं (लन्दन से धन मँगाने के लिए) तब जिस कीमत से या तो हम रुपया बेच कर पाउण्ड खरीदते हैं या पाउण्ड बेच कर रुपया खरीदते हैं उसमें

हम पता लग जाता है कि हमारे प्रतीक (चलण) की विदेश में क्या कीमत है।

विदेश में कीमत कैसे बनती है?

प्रश्न का उत्तर यह है कि हर चीज की कीमत लेने और बेचनेवालों की गरज पर अवलम्बित है। वैसे ही इस विषय में भी होता है।

पर इसे ज्यादा स्पष्टतया समझ लेना आवश्यक है। यदि हम विदेशों में माल ज्यादा लेते हैं और कम बेचते हैं जैसे कि हमने १०० का माल तो लिया और ६० का बेचा, तो हम विदेशों को ४० चुकाना बाकी रहा। यह ४० हम कैसे चुकाएंगे?

इसके तीन तरीके हो सकते हैं।

एक तरीका तो है पावनेदार को सोना भेज कर। सोने के सभी ग्राहक होते हैं और तमाम मुल्कों ने करीब-करीब सोने की एक निर्धारित कीमत कायम कर रखी है उस निर्धारित कीमत पर हर मुल्क की नोट प्रसारक बैंक प्रायः सोना खरीदने को तैयार रहती है। इसलिए पावनेदार को सोना भेज कर हमारा कर्ज चुकाने में तो कोई कठिनाई है ही नहीं। पर हर साल सोना भेज कर तो वही मुल्क माल खरीद सकता है जिसके पास सोने की बड़ी-बड़ी खानें हों और जहां सोने की बड़ी भिकदार में पैदाइश भी हो। इसलिए सोना भेज कर दाम चुकाने का यह तरीका चाहे १-२ साल के लिए भले ही चले पर हर मुल्क के लिए निरन्तर इस तरीके का चलाना व्यावहारिक नहीं हो सकता।

दूसरा तरीका है—जहां माल खरीदा वहीं लोगों से धन उधार लेकर माल का दाम चुकाया। यह तरीका भी किसी समय के लिए चाहे उपयुक्त हो पर निरन्तर नहीं चल सकता। निरन्तर उधार कौन देता जायगा? आखिर कभी तो वापिस चुकाना ही होगा। इसलिए यह तरीका भी निरन्तर नहीं चल सकता।

अब एक तीसरा तरीका है जो दाम चुकाने के लिए सदैव व्यावहारिक होता है। यह तरीका यह है कि अपने यहां बनी चीजों को या अपनी सेवा या श्रम को विदेश में बेचकर उससे जो द्रव्य मिले हम

खरीदी, उसकी कीमत चुकाने के लिए बदले में हमने वहां गहूं बेचा। अब गहूं यहां मिलता है १ रुपए का ८ सेर। वहां भाव है १ मार्क का १० सेर गहूं। हम १ मार्क वहां भेजना चाहिए, क्योंकि हमने १ मार्क की वस्तु ली है। तो हमको एक मार्क चुकाने के लिए वहां १० सेर गहूं बेचना पड़ा जिसका कि हमें यहां स्वदेश में १¼ रुपया देना पड़ा। इसके माने यह हुए कि पहले जहां रुपए की कीमत १ मार्क थी, अब १¼ रुपए की कीमत १ मार्क हुई। दूसरे शब्दों में हमारे रुपए की दर १ मार्क से गिर कर ८० मार्क रह गई। $\frac{१ \text{ मार्क}}{१\frac{१}{४} \text{ रुपया}} = ८०$ मार्क। अर्थात् २० प्रतिशत कीमत गिर गई।

विदेशी मुल्कों में हमारे द्रव्य की कीमत को शास्त्रीय भाषा में हुण्डी की दर कहते हैं। जब हमारे चलण की कीमत विदेशों में बढ़ती है तो हम कहेंगे कि हमारी हुण्डी की दर तेज है। हमारे चलण की कीमत गिरी, तो कहेंगे कि हुण्डी की दर मन्दी है।

७

हुण्डी की दर गिरने से या ऊची होने से हमारे मुल्क के उद्योग धधो और आयात निर्यात पर क्या असर होता ह और वह असर कसे होता ह इसका विवेचन भी कर लें।

यह तो अब समझ म आ ही गया होगा कि फुलावट-नीति की रचना चलण में प्रतीक की बहुतायत की बुनियाद पर खडी की जाती ह और इसके फलस्वरूप जिन्सो के दाम चढ जाते ह। जिन्सो के दाम क्या चढ जाते ह, यह पहले हम समझ चुके। नाणे की अधिकता के मान ह कि नाणा सस्ता ह। नाणा सस्ता ह इसी भाव को हम दूसरी भाषा में यो भी व्यक्त कर सकते ह कि चीजें महगी ह। यदि फुलावट नीति द्रुत गति से आगे ह तो फिर लोग मुद्रा की साख में विश्वास भी खो बठते ह। इससे भी लोगो की रुचि मुद्रा म धन रोकने से हट कर जिन्सो में धन रोकने की ओर ज्यादा बढ जाती ह। ये सब के सब जिन्सो के दाम तेज करने के हेतु बन जाते ह।

पर एक और चीज है जो जिन्सो के दाम बढाने में सहायक होती ह। वह है विदेश से आनेवाली चीजो का ऊचा पडता। जब हमारी हुण्डी की दर गिर जाती ह तो विदेश म तो हमारे यहा आनेवाली चीज के दाम चाहे वही पुराने दाम हो पर हुण्डी गिर जाने से यहा का पडता अपने-आप ऊचा हो जाता ह।

मसलन हम एक घडी विदेश से मगानी ह। उसकी कीमत, मान लीजिए १० मार्क ह। पुराने हिसाब से १० मार्क के मान थे १० रुपए। पर चूकि अब हमारी हुण्डी की दर २० प्रतिशत, जसा कि हम ऊपर बता चुके, गिर गई इसलिए १० रुपए के हमें कुल ८ मार्क ही मिलते ह। इसके मान यह हुए कि १० मार्क खरीदने के लिए हमें अब १२॥ रुपए की जरूरत ह। इसके मान यह भी हो गए कि जिस घडी का पडता पहले १० रुपए का था वह अब १२॥ रुपए का हो गया।

इसी तरह हमारी निर्यात की चीजो का पडता भी बढ जाता ह..

इस तरह—मान लीजिए कि हम यहां से बाहर रुई भेजते हैं और १ गांठ रुई के दाम जर्मनी में १०० मार्क पहले थे। उसके मानी थे पुरानी हुण्डी के हिसाब से, १०० मार्क = १०० रुपए। अब भी मान लीजिए जर्मनी में रुई की कीमत वही १ गांठ के १०० मार्क है। पर चूंकि हुण्डी की दर गिर गई इसलिए १०० मार्क को बेच कर हम रुपया खरीदते हैं तो ८० मार्क = १ रुपया इस हुण्डी की दर से हमें १०० मार्क के १२५ रुपए उपलब्ध होते हैं। इसके मानी हुए कि रुई के नियात के लिए पड़ता लगता है १२५ रुपया प्रति गांठ जो पहले १०० रुपया प्रति गांठ था।

विदेशों से आनेवाली और विदेशों को जानेवाली चीजों का जब पड़ता बढ़ जाता है तो उन चीजों के चढ़े दाम देख कर अन्य चीजों के दाम भी अपने आप ऊंचे जाने लगते हैं। इस तरह अन्य कारणों के अलावा विदेशों से सम्बन्ध रखनेवाली चीजों का पड़ता ऊंचा होने की वजह से भी जिन्सों के दामों को ऊंचा जाने में सहायता मिलती है।

हुण्डी की दर और उद्योग धंधे

अब इस परिस्थिति में उद्योग धंधों पर क्या असर होता है? इसका उत्तर तो साफ है। जब जिन्सों के दाम ऊंचे जाते हैं तो कारखानेदार का मुनाफा भी बढ़ता है। यह सही है कि जिन्सों के दाम ऊंचे जाते हैं तो कच्चे माल के दाम भी बढ़ते हैं। पर इतना होने पर भी कारखानेदार या अन्य माल उपजानेवाले लोगों (जैसे किसान, जुलाहा, बढ़ई इत्यादि) के मुनाफे की वृद्धि में कोई रुकावट नहीं होती। बतौर उदाहरण हम एक कारखानेदार के काल्पनिक पड़ते का जरा विश्लेषण कर लें। हर १०० रुपए के माल पर मान लीजिए कारखानेदार का खर्च नीचे लिखे अनुसार होता है —

रुपया	
५०	कच्चा माल
२५	मजदूरी
१०	घिसाई
५	ब्याज

१०	मुनाफा
१००	

अब मान लीजिए फुलावट-नीति के कारण चीज़ों के दाम बढ़े और जिस माल का कारखानेदार को पहले १०० रुपया मिलता था उसको अब १२५ रुपया मिलेगा। इसके साथ साथ मान लीजिए कच्चे माल का दाम भी बढ़ा और मजदूरी भी उसी अनुपात से बढ़ी तो फिर मुनाफे पर क्या असर होगा? नीचे के तलपट से इसका स्पष्ट अन्दाजा लग जायगा।

	पुरानी कीमत रुपया	नई कीमत रुपया
कच्चा माल	५०	६२॥
मजदूरी	२५	३१।
घिसाई	१०	१०
ब्याज	५	५
मुनाफा	१०	१६।
	१००	१२५

उपरोक्त तफसील से पता लगेगा कि जहां कच्चे माल और मजदूरी का दाम २५ रुपया प्रतिशतक बढ़ा वहां घिसाई और ब्याज में पुराने और नए खर्च में कोई फर्क नहीं पड़ा। कारण स्पष्ट है। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं फुलावट और गिरावट के कारण लेनदेन की रकम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। १०० रुपए हमने कर्ज लिया था तो आज भी हमें १०० रुपया ही चुकाना है। इसलिए ब्याज पर कोई असर नहीं पड़ता। और घिसाई पर भी क्या असर पड़ेगा? इसलिए मुनाफा जो पहले १० रुपए एक सौ पर था वह अब १६। हो गया। या यों भी हो सकता है कि कारखानेदार की आज यह शक्ति है कि पहले जहां बाहर की चीज का पड़ता १०० रुपए था और कारखानेदार मुनाफे को अक्षुण्ण रखते हुए १०० रुपए से कम में नहीं बेच सकता था आज वह विदेशी माल का पड़ता १२५ रुपया होने पर भी १० रुपए का ही मुनाफा रखे तो ११८ रुपया १२ आने में बेच सकता है।

इस हिसाब से यह सही है कि कारखानदार का मुनाफा बढ़ गया और यदि वह अपने दाम नहीं घटाता तो मुनाफा १० के बजाय १६। हो गया यानी ६७॥ प्रतिशत बढ़ गया। पर साथ ही यह भी जानना चाहिए कि रुपए के दाम बढ़ने के कारण उस मुनाफे की ताकत ६७॥ प्रतिशत नहीं बढ़ी। यदि जिन्सों के दाम औसतन सवाए हो गए हैं जैसा कि हमने हिसाब लगाया है तो फिर दाम बढ़ने के पहले जो करामात १३ रुपए में थी वही आज १६। में है। मान लीजिए कि पहले १३ रुपए में १ मन पाट मिलता था और अब पाट के दाम बढ़ कर सवाए हो गए—अर्थात् १६। हो गए, तो पहले के १३ और अबके १६। रुपए की क्रय शक्ति में कोई फर्क नहीं पड़ा। बराबर।

तो अब इस परिस्थिति के दो असर साथ साथ हुए। एक तो स्वदेशी उद्योग धंधों पर और दूसरा विदेशी आयात पर और निर्यात पर। स्वदेशी उद्योग धंधों पर अच्छा असर हुआ। विदेशी आयात मुरझाने लगा और निर्यात पनपने लगा।

सबसे पहले स्वदेशी उद्योग धंधों को लीजिए।

यह स्वाभाविक है कि जब मुनाफा बढ़ता है तो कारखानदार या माल उपजानेवाले को ज्यादा माल पैदा करने की चाह होती है। ऊपर के हिसाब से हमने मान लिया है कि मजदूरी भी अन्य जिन्सों के दामों के साथ साथ बढ़ने लगती है। पर व्यवहार में ऐसा होता नहीं। जब जिन्सों के दाम बढ़ते हैं तो मजदूरी भी जब तक उसी अनुपात से नहीं बढ़ती तब तक कारखानेदार को हमारी कूत से भी मुनाफा अधिक रहता है। इसके फलस्वरूप कारखानेदार माल ज्यादा पैदा करने लगता है कारखाना बढ़ाने भी लगता है। नए नए कारखाने भी खुलने लगते हैं। अधिक लोगों को मजदूरी मिलने लगती है।

इसका प्रभाव बाहर से आनेवाली चीजों पर भी पड़ता है। चूंकि कारखानेदार का मुनाफा बढ़ा है, इसलिए उसमें यह ताकत आ जाती है कि वह मुनाफे को थोड़ा कम करके भी विदेशी चीजों के मुकाबले में अपना माल सस्ता बेच सके। विदेशी चीजों का ऐसी प्रतिद्वंद्विता में टिकना मुश्किल हो जाता है। विदेशी आयात पर इससे बुरा असर पड़ता है।

इसके विपरीत, निर्यात पर अच्छा असर होता है क्योंकि जब ऊंचे पड़ता की वजह से यहां दाम ऊंचा हो गया पर विदेशों में हमारी चीज का दाम वही पुराना है, तब यहां के उपजानेवाले थोड़ा-सा यहां भाव मंदा कर दें तो विदेश में भाव पुराने दामों में भी सस्ता हो जायगा। और इस तरह विदेशों में हमारे माल की बिक्री बढ़ेगी। सारांश यह कि अपनी मुद्रा की कीमत गिरा देने से हमारे कल-कारखाने, उद्योग धंधे सब पनप उठते हैं विदेशी आयात पर प्रहार होने लगता है, विदेशी निर्यात जागने लगता है। इस तरह देश की समृद्धि बढ़ने लगती है।

दर गिरने में लाभ स्थायी या अस्थायी ?

यह प्रश्न हो सकता है कि जरा हुण्डी के हेरफेर से या मुद्रा की कीमत कम कर देने से समृद्धि बढ़ने का क्या वास्ता ? वास्ता है। वह इस तरह से।

एक आलसी मनुष्य है, वह न खेत बोता है न मेहनत करता है। इसलिए दारिद्र्य ने उसके घर पर प्रभाव जमा रखा है। अब किसीने उससे कहा कि हम तुम्हें रोजमर्रा कुछ मिठाई खिलाएंगे कुछ इनाम दिया करेंगे और कुछ अच्छे कपड़े भी देंगे बशर्ते कि तुम अपने खेत को मेहनत के साथ जोतो और उसमें जो फसल हो उसका आधा हिस्सा हमें दे दो। वह आलसी मिठाई और अच्छे कपड़ों के प्रलोभन में आकर काम करने लगता है और अन्त में अच्छी फसल तैयार कर लेता है। फसल के आधे हिस्से की आमदनी वह प्रलोभन देनेवाले सज्जन को सौंप देता है। इस सज्जन का तो जितना जितना मिठाई इत्यादि पर खर्च किया था उसकी पूरी कीमत उस फसल के आधे हिस्से में से वसूल हो जाती है और उस आलसी को अच्छा खाने पहनने को मिला, और आधी फसल मिली जिससे उसकी समृद्धि बढ़ गई। इसके अलावा उसकी आदत भी तो बदली। काम करते-करते वह आलसी कर्मशील बन गया। प्रलोभन देनेवाले सज्जन का कुछ व्यय नहीं हुआ, और आलसी कर्मण्य बन गया।

अब कोई कहे कि हुण्डी की दर गिरने और समृद्धि से क्या वास्ता ? तो यह भी कहा जा सकता है कि आलसी के मिष्टान्न भोजन से उसकी समृद्धि का क्या वास्ता ? पर बात यह है कि गिरती हुई हुण्डी की दर या

दूसरे शब्दों में गिरती हुई मुद्रा की कीमत माल उपजानेवालों के दिलों में एक तरह का उत्साह और तृष्णा पैदा करती है जो उन्हें ज्यादा काम करने के लिए सदेड़ती है और इस तरह देश की समृद्धि पर इसका अच्छा असर होता है।

ठीक इसका विपरीत असर गिरावट की नीति का होता है।

हमने यह बताया है कि यह अच्छा असर मुद्रा की गिरती हुई कीमत का होता है। पर एक दफा कीमत गिरा दी गई, फिर भी क्या उसका असर होता है ?

होता है पर आंशिक। हमने पंप का पहिया घुमाया और पानी कुएं में से निकलने लगा। जब पहिया घुमाना बन्द कर दिया तब पानी भी निकलना बन्द हो गया। इसी तरह जब हुण्डी की दर गिरती ही रहती है, तब तो चीजों के दाम भी बढ़ते ही चले जाते हैं और उससे पैदा होने वाले नतीजे—जैसे उद्योग धंधों की उन्नति, अधिक माल की पैदाइश, बेकारों को रोजगार, विदेशी आयात की कमी, निर्यात की पुष्टि इत्यादि अपना प्रभुत्व जमाए रखते हैं। उसी तरह हुण्डी की गिरी हुई दर भी एक जगह आकर जब स्थिर हो जाती है और लोगों को उसकी स्थिरता में विश्वास आ जाता है तब गिरती हुई हुण्डी से जो नतीजे पैदा हुए थे वे धीरे धीरे करके रफा होने लगते हैं—अर्थात पंप में से पानी निकलना धीरे धीरे बन्द हो जाता है।

पर इसके माने यह नहीं कि हुण्डी गिरा कर फिर स्थिर कर दी तो उसका कोई असर ही नहीं हुआ। जो पानी कुंए से निकल आया उसकी भी तो कोई कीमत है। उस निकले हुए पानी से हमने सिंचाई की, धान पैदा किया, उससे हम पुष्ट बने। पुष्ट बन कर हमने मेहनत ज्यादा की। उस मेहनत से फिर नई सम्पत्ति पैदा की और इस तरह से समृद्धिचक्र जो चला तो फिर चलता ही गया। इस दृष्टि से गिराई हुई मुद्रा की दर का लाभ भी एक दृष्टि से स्थायी-सा हो गया।

पर यह भी कोई कह सकता है कि फिर हुण्डी की दर गिरने से इस तरह लाभ होता है तो हम दर को गिराते ही क्यों न जायं ? स्थिर कर ही क्यों ? इस रामबाण औषधि में अघाना ही क्यों ? अफसोस ! मगर

ध्वज के सेवन से शरीर की चपलता अवश्य बढती है, पर वह स्वयं मनुष्य की क्षुधा को नही मेटता । और ज्यादा सेवन से तो शरीर का अन्त भी हो सकता है । फिर यदि हम मुद्रा की दर को गिराते ही चले जायं तो एक समय ऐसा आ सकता है कि जब मुद्रा की साख में किसीको श्रद्धा ही न रहे और मुद्रा स्वयं नेस्तनाबूद हो जाय । और फिर तज्जनित हानि-लाभ भी कहा रहे ? जब शरीर ही नही तो प्राण कहा ? मुद्रा ही मर मिट तो उससे होनेवाले हानि लाभ कहा रहे ? और यदि मुद्रा की कीमत गिरा देना ही एक जादू का डंडा हो जो एक पल में समृद्धि पैदा कर दे, तो फिर हर मुल्क ही इसका प्रयोग क्यो न करे ? और यदि हर मुल्क इसका प्रयोग करने लग जाय तो दो देशो के बीच जो हुण्डी की घटा बढ़ी से हानि लाभ होता है वह होने ही नहीं पाए । दो लकीर पास-पास में हो, और एक बड़ी हो तो दूसरी छोटी कहलायगी । पर यदि बड़ी को काट कर छोटी कर दी जाय तो, जो पहले छोटी थी वह अब बड़ी कहलायगी ।

हुण्डी गिरने के माने भी तो यही है कि हमने अपनी मुद्रा की दर गिरा दी, अन्य मुल्कवालो ने नही गिराई । ऐसी हालत में अपेक्षाकृत हमारी मुद्रा सस्ती हो गई । पर यदि दूसरे देशवालोने भी गिरा दी, तो फिर हमारी हुण्डी की दर दूसरे देशो के मुकाबले में नीची नही रही । और ऐसी हालत में विदेशी आयात निर्यात पर कोई अच्छा-बुरा असर नही हुआ । बताना तो यह है कि हुण्डी गिरने का असर पूर्णतया स्थायी नहीं है, एक अंश में स्थायी है । मकरध्वज-सेवन का कुछ तो लाभ शरीर को मिलता ही है । हुण्डी गिराने से समाज की आर्थिक स्थिति को जो एक धक्का साल मिलता है उसका स्थायी असर भी रह ही जाता है । ठीक इसके विपरीत,गिरावट नीति द्वारा मुद्रा की दर बढ़ा कर समाज की आर्थिक स्थिति को हानि पहुंच जाती है वह भी स्थायी नुकसान कर बैठती है । छाती में जो सेल लगा उसका घाव तो रूझ गया, पर उसका दाग तो रह ही गया और वह जगह भी सदा के लिए नाजुक बन गई ।

कभी-कभी तो ऐसा देखा गया है कि संसार की बड़ी बड़ी ऐतिहासिक घटनाओ की तह में एक छोटी-सी घटना हुई है, जिसको इतिहास लिखने वालो ने कम महत्व दिया । प्रशिया के फ्रेडरिक दी ग्रेट को महान बनाने

का मौका या मिला कि आस्ट्रिया का शाहन्शाह मर गया। पर आस्ट्रिया का शाहन्शाह भी तो इसलिए मरा कि वह एक रोज कुकुरमुत्ते की तरकारी बहुत परिमाण में खा गया। 'विधि का लिखा को मेटनहारा' यह उक्ति सही है। पर विधि भी जब कोई बड़ी होनहार को घड़ने बैठता है तब शुरुआत एक नगण्य चीज से करता है। आस्ट्रिया के शाहजादा के खून ने यूरोप में खून की नदियां बहा दीं। दुर्योधन और अर्जुन, जब दोनों श्रीकृष्ण के पास महाभारत युद्ध के लिए सहायता मांगने गये तब यदि दुर्योधन श्रीकृष्ण के सिरहाने न बैठ कर पैताने बैठता या तो श्रीकृष्ण की सेना न लेकर स्वयं श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में लेता तो महाभारत युद्ध का अन्त क्या होता यह बताना कठिन है।

पर कोलम्बस ने अमेरिका का आविष्कार किया और नई दुनिया से व्यापार रोजगार चमक उठा। उसके कारण यूरोप भर में सस्तेजी फैल गई ऐसा यूरोप के आर्थिक इतिहासज्ञ मानते हैं। अमेरिका की भूमि क्या मिली यूरोप के लिए तो गड़ा सोना मिल गया। और केलीफोरनिया में तो सचमुच सोने की खान मिल गई जिन्होंने यूरोप की समृद्धि की खूब वृद्धि की। इन सबका यूरोप पर कितनी मात्रा में असर हुआ यह चाहे न मापा जा सके पर जो जाहोजलाली की बाढ़ यूरोप में आ गई उसने उसको सदा के लिए सम्पन्न कर दिया, इसमें कोई शक नहीं।

इसलिए हुण्डी गिरने का असर चाहे अस्थायी हो पर एक मर्तबा मिला हुआ सहारा कमजोर शरीर के पनपने में काफी सहायता पहुंचा देता है।

फुलावट—नियंत्रित और अनियंत्रित

फुलावट-नीति के शुभ परिणामों का भी हमने जिक्र किया और अनिमात्रा में उसके बुरे नतीजे का भी वर्णन किया। यहां यह समझ लेना चाहिए कि जहां फुलावट-नीति केवल व्यापार रोजगार को चमकाने के लिए उद्योग धंधों को पनपाने के लिए काम में लाई जाती है वहां फुलावट स्वल्प मात्रा में और नियन्त्रण के साथ उपयोग में लाई जाती है।

हम बता चुके हैं कि जब फुलावट द्रुत-गति से अनियन्त्रित होकर चलती है तब ब्याज सस्ता नहीं महगा—अत्यन्त महगा हो जाता है। महगा ब्याज भी रोजगार व्यापार के लिए घातक है। इसलिए स्वेच्छा से जब फुलावट शस्त्र का प्रयोग होता है तब सारी नीति पर इस हिसाब से नियन्त्रण रखा जाता है कि जिससे सिक्के की साख में से लोगों की श्रद्धा न टूटे, लोगों में इसके सम्बन्ध में भय या घबराहट का प्रचार न हो, ब्याज की दर साधारणतया ठीक हो और दामों में तेजी इतनी ही आवे जितनी कि संचालक चाहते हों। इसके माने यह हुए कि ऐसी नीति तो स्वेच्छा से ही काम में लाई जाती है और उसी हालत में काम में लाई जा सकती है जबकि देश की सरकार प्रजा का विश्वासभाजन हो बलिष्ठ हो और देश और परदेश में उस सरकार और उस देश की पूरी धाक हो। और चूंकि यह सारा का-सारा खेल अपने देश में उद्योग धंधों को प्रोत्साहन देने के लिए और लोगों में नई आर्थिक जागृति पैदा करने के लिए खेला जाता है इसलिए यह फुलावट भी स्वल्प मात्रा में ही होती है।

पर इसके विपरीत, जहां फुलावट अनियन्त्रित होती है—जैसा कि रूस जर्मनी वगैरह के सम्बन्ध में हम ऊपर बता चुके हैं—तब इसका परिणाम दूसरी तरह का होता है। यह सही है कि उस फुलावट में भी कल कारखाने बेहद पनपते दिखाई देते हैं पर मुद्रा की शक्ति का इस जोर से ह्रास होता चला जाता है कि वह करोड़ों का मुनाफा हजारों के मुकाबले में भी बलहीन होता है। और दूसरी तरफ सरकार और देश की साख में इतने जोर का धक्का पहुंचता है कि जिनके पास पूंजी होती है वे तबाह हो जाते हैं। लोग अपना माल मत्ता, सम्पत्ति आदि बाहर भेजने लगते हैं। परस्पर की साख में भी विश्वास टूट जाता है। अन्तर्राष्ट्रों में देश की साख चौपट हो जाती है। सारा आर्थिक तन्त्र छिन्न भिन्न हो जाता है।

ऐसी स्थिति अवश्य ही अवांछनीय है, और यह स्पष्ट है कि जान बूझ कर ऐसी स्थिति को कोई निमन्त्रण नहीं देता। यह तो मजबूरी में ही आती है। देश का दिवाला निकलने का दूसरा नाम यह उग्र फुलावट

है, जिसे राज दुराजी के जमाने में ही सरकार बलात बाध्य होकर अपनाती है। सरकार को जब राजतन्त्र चलाने के लिए कर संग्रह में भी कठिनाई मालूम पड़ती है तब कागज, स्याही और प्रेस की शरण लेकर इस जोर से नोट छापना शुरू करती है कि इस ताण्डव नृत्य को देख कर एक छिन के लिए भी कोई अपने पास नोट रखने की हिम्मत नहीं करता।

८

हम बता चुके हैं कि चलण का मूल्य स्थिर नहीं पर घटता-बढ़ता है। तो भी जन-समाज के मन पर एक ऐसी स्थायी और बुनियादी छाप पड़ी हुई है कि चलण का मूल्य स्थायी है। यदि ऐसा नहीं होता तो जिस निर्भयता के साथ लोग रुपया उधार देते हैं और सरकारी कागजों में लगाते हैं वैसा कभी नहीं होता। पर मनुष्य तो प्राय: वर्तमान का पुजारी होता है और पुरानी स्मृति कटु भी हो तो उसे भूल जाता है। इसलिए जब तक कोई भयंकर युद्ध, विप्लव या आकस्मिक घटना के कारण चलण की कीमत बुरी तरह नहीं गिरने लग जाती तब तक साधारण मनुष्य को तो पता भी नहीं चलता कि चलण की कीमत गिरी है क्या! साधारण फुलावट यदि नियन्त्रित हो तब तो आम जनता को पता भी नहीं चलता कि पर्दे के पीछे क्या नाटक खेला जा रहा है। तो भी जिन्सों के दामों के आंकड़ों का हम सूक्ष्म अध्ययन करें तो हमें सहज ही पता लग जायगा कि पिछले सौ सालों में चलण के मूल्य में घटा-बढ़ी होती ही रही है।

जिन्सों के दामों के आंकड़े कैसे तैयार होते हैं इसका संक्षिप्त विवरण भी जान लेना चाहिए। मान लीजिए कि हमारे देश के गरीब किसान अधिकतर गेहूं, बाजरा, मोठ, चना, घी, तेल, दियासलाई, कपड़ा, गुड़, इत्यादि—४० या ५० चीजों का उपयोग करते हैं। तो आंकड़े तैयार करने वाले विशेषज्ञ उनसब जिन्सोंके दामोंका एक गड-पड़ता निकाल लेते हैं। वह गड-पड़ता साधारण तरहसे भी निकाला जाता है कि जिस सालको हम बुनियादी साल मानते हैं उसके गड-पड़ताको १०० मान लिया जाता है। मान लीजिए सन् १९१४ को हमने बुनियादी साल माना। उस साल में

गेहूं का भाव था	५ रुपया मन
जौ का भाव था	४ रुपया मन
तेल का भाव था	२० रुपया मन
घी का भाव था	४० रुपया मन

गुड का भाव था ५ रुपया मन
कपड का भाव था ४ आने गज

(यह महज उदाहरण है इसीलिए ४० ५० चीजों के दाम न देकर सिर्फ ६ जिन्सों के दाम लिए हैं।)

तो हमने उस साल की जिन्सों की कीमत १०० के अंक पर कायम कर ली। अब १९४१ में मान लीजिए —

गेहूं का भाव था ६। रुपया मन (याने २५ प्रतिशत बढा)
जौ का भाव था ५ रुपया मन (याने २५ प्रतिशत बढा)
तेल का भाव था १५ रुपया मन (याने २५ प्रतिशत घटा)
घी का भाव था ८० रुपया मन (याने १०० प्रतिशत बढा)
गुड का भाव था २॥ रुपया मन (याने ५० प्रतिशत घटा)
कपड का भाव था ६ आने गज (याने ५० प्रतिशत बढा)

१ वस्तु में २५ प्रतिशत बढा
१ ' २५ ' बढा
१ ' २५ घटा
१ ' १०० बढा
१ ५० घटा
१ " ५० बढा

तो १२५ प्रतिशत कुल बढा और ६ जिन्सों द्वारा १२५ प्रतिशत को विभाजित किया तो फल यह निकला कि एक जिन्स पर २०$\frac{५}{६}$ प्रतिशत वृद्धि हुई ($\frac{१२५}{६}$ = २०$\frac{५}{६}$ प्रतिशत)—अर्थात जिन्सों की दर १०० से बढ कर १२०$\frac{५}{६}$ हो गई। तात्पर्य यह हुआ कि जिस चलण की क्रय शक्ति १९१४ में १०० थी वह १९४१ में २०$\frac{५}{६}$ प्रतिशत कम हो गई। दूसरे शब्दों में, चलण का दाम २०$\frac{५}{६}$ प्रतिशत गिर गया।

सूचक अंक

इस तरह जिन्सों की दर के जो अंक तयार किए जाते हैं उन्हें हम 'सूचक अंक" के नाम से पुकार सकते हैं। अब १९१५ से १९४० तक के सूचक अंक नीचे की तालिका में देते हैं। इससे पता लगेगा कि चलण की क्रय शक्ति में कितनी घटा बढी हुई है, अर्थात् चलण की कीमत किस

कदर घटती या बढ़ती रही है।

कलकत्ते में कुछ खास चीजों के थोक दाम

१९१४=१००

१९१५	औसत	११२	१९२८	औसत	१४५
१९१६	"	१२८	१९२९	"	१४१
१९१७	"	१४५	१९३०	"	११६
१९१८	"	१७८	१९३१		९६
१९१९	"	१९६	१९३२	"	९१
१९२०	"	२०१	१९३३		८७
१९२१	"	१७८	१९३४	"	८९
१९२२	"	१७६	१९३५		९१
१९२३	"	१७२	१९३६	"	९२
१९२४	"	१७३	१९३७	"	१०२
१९२५	"	१५९	१९३८	"	९६
१९२६		१४८	१९३९		१०८
१९२७	"	१४८	१९४०	"	१२०

पर यह भी सही है कि चलण की कीमत के स्थायित्व में जितनी श्रद्धा यूरोपवासियों की रही उतनी इस देश के लोगों की न रही। हमारे पिछले इतिहास में समय-समय पर इतने राज्य बदलते रहे हैं, इतने दंग फसाद होते रहे हैं कि इसके कारण भारतवासियों को स्वभाव से ही सोने चांदी में मोह ज्यादा रहा। इसके विपरीत इंगलिस्तान में, बाहर के आक्रमणों से मुक्त रहने की वजह, वहां के लोगों में काफी अमन चैन रहा। नतीजा यह हुआ कि स्वभाव से ही चारों ओर शान्ति और व्यवस्था दिखाई देती रही, और इसलिए उन्हें अपनी सरकार की साख में श्रद्धा भी ज्यादा रही। लंदन मार्केट का एक बहुत बाजार बन गया और अंग्रेजों की देखा-देखी हमने भी सरकारी कागजों में और तरह तरह के शेयरों में रुपया लगाना सीख लिया।

चलण की कीमत गिरती आई है

पर बताना तो यह था कि चलण की कीमत स्थायी नहीं रही और दूसरी बात यह बतानी थी कि चलण की कीमत गिरा कर अपना उल्लू

सीधा करने का तरीका इतिहास में हर सल्तनत ने—जब वह विपद्ग्रस्त हुई तब—बिना किसी हिचकिचाहटके अख्तियार किया है। रोमकी प्राचीन सरकार ने हजारों साल पहले अपने चलण को अशत खोटा करके अपना खजाना भरा सभी से हर सल्तनत ने यह पाठ सीख लिया। और चलण के दाम गिरा कर प्रजा की बिना जानकारी के कर वसूली का यह अद्भुत तरीका मौके मौके पर हर सरकार ने विपद् के समय अपने लाभ के लिए कामयाबी के साथ आजमाया।

बात यह है कि सिक्का जैसा भी हो अच्छा या बुरा, उसके चलण का संपूर्ण अधिकार तो हर देश की सरकार के पास रहता है। और इस अधिकार का दुरुपयोग करके भी यदि कोई सल्तनत अपना दिवाला दबा सके और राज्यच्युत होने से अपने आपको बचा सके तो कौन ऐसी संयमी सल्तनत हो सकती है जो इस अधिकार का दुरुपयोग करने के लोभ का संवरण कर सके ? इसलिए जहां किसी सल्तनत पर आफत आई कोई बड़ा बलवा होने को है या कोई बड़ा युद्ध छिड़ गया और धन की बड़ी राशि की जरूरत आ पड़ी और प्रजा सीधी तरह से देने को तयार नहीं, यदि जबरन लिया जाय तो क्रांति की आग धधक उठती है लोगों की रही सही सहानुभूति भी गायब हो जाती है, तो ऐसे विकट समय में सबसे सीधा और सहज मार्ग कर वसूली का यही रह जाता है कि नोट छापे जाओ और उसीसे अपना खर्च चलाए जाओ। धन की जरूरत पड़ी और सीधी अंगुली से घी न निकला तो फिर चलण के दाम गिरा कर टेढ़ी अंगुली से —चाहे वह फिर अधिकार का दुरुपयोग ही क्यों न हो—घी निकाला।

पर एक बात और है। चलण के दाम गिराने में ऐसी विपद्ग्रस्त सरकार का तो स्वार्थ रहता ही है पर प्रजा के एक दल विशेष की भी सहानुभूति रहती है। हमने पहले बताया है कि चलण के दाम गिरने से कर्जदार और बंधी मालगुजारी देनेवाले और अन्य ऐसे लोग जिनका दायित्व बंधी हुई रकम में हो, उन्हें लाभ होता है। इसलिए ऐसे सब लोग चलण के दाम गिरने के स्वभाव से ही पक्षपाती होते हैं, और विपद्ग्रस्त सरकार को तमाम ऐसे लोगों की सहानुभूति अपने आप मिल जाती है। प्रख्यात अर्थशास्त्री श्री केयन्स ने सच कहा है—

"चलण का मूल्य जब गिरता है तब उसका लाभ केवल सरकार तक ही सीमित नहीं रहता। किसान, कर्जदार और अन्य लोग जिन्हें अपने अपने क्षेत्र में एक निर्धारित रकम देनी पड़ती है—मसलन ब्याज या मालगुजारी इत्यादि—वे सब-के-सब इस लाभ में शरीक हो जाते हैं। जैसे आर्थिक क्षेत्र में आजकल व्यापारी लोग समाज के एक रचनात्मक और क्रियात्मक अंग माने जाते हैं वैसे ही प्राचीन समय में किसान इत्यादि एक विशिष्ट अंग माने जाते थे और सल्तनत पर इनका प्रभाव तो पड़ता ही रहता था। कोई भी सांसारिक परिवर्तन, जो द्रव्य के मूल्य को ठेस पहुंचाता था वह नए आदमियों के लिए एक रसायन का काम कर जाता था। यह परिस्थिति पुराने लोगों की दौलत का नाश करके नए लोगों के पास दौलत ला देती थी। जिन्होंने धन संग्रह करके रखा था उनका खात्मा करके व्यवसायशील लोगों को यह परिस्थिति सहायक हो जाती थी। कुदरत का यह खेल ऐसा लगता है मानो संग्रह और क्रिया के बीच के संग्राम में द्रव्य के मूल्य का गिरना क्रिया का पक्ष लेता रहा हो। द्रव्य के मूल्य के गिरने की प्रवृत्ति ने बपौती धन और उस पर चक्रवृद्धि ब्याज खानेवाले इन्सान की खासियत पर काफी आक्रमण किया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि बपौती सम्पत्ति का अकर्मण्य होकर भोगने की वृत्ति को इसने जबरदस्त धक्का मारा। इस प्रक्रिया ने हर पीढ़ी को बपौती सम्पत्ति के उत्तराधिकार से एक तरह से वंचित-सा कर दिया। जो हो विपद्ग्रस्त सरकार की जरूरतें और कर्जदार वर्ग की आवश्यकताएं, इन दो प्रभावों ने मिलकर कभी एक तो कभी दूसरी शक्ति ने द्रव्य के मूल्य का लगातार घटाना जारी रखा है। यह क्रिया ईसा से ६०० साल पहले, जब पहले-पहल सिक्का चला, तभी से न्यूनाधिक रूप से चलती आ रही है।

घुलावट का यह एक दिलचस्प पहलू है। किस तरह समाज की भिन्न भिन्न श्रेणियों का स्वार्थ सिक्के के मूल्य के साथ बंधा है, किस तरह जानबूझकर समाज की कुछ श्रेणियां चलण के मूल्य को गिरा देने के पक्ष में रहती हैं और असाधारण समय में लड़खड़ाती हुई सल्तनत के लिए भी चलण का मूल्य गिराना कितना उपयोगी अस्त्र है, यह ऊपर के कथन से जाहिर होता है।

६

फुलावट एक तरह का कर—प्रच्छन्न कर है, यह कम लोग जानते हैं। पर यह ध्रुवसत्य है कि एक कमजोर सरकार भी जिसके कर लगाने के अन्य सब साधन सूख गए हों और जिसके लिए कोई भी कर उगाहना असंभव-सा हो गया हो इस अंतिम अस्त्र का उपयोग करके प्रच्छन्न कर उपार्जन कर सकती है। इस प्रच्छन्न कर का यह मजा है कि कोई कितना ही सरकार का विरोधी क्यों न हो वह भी इस कर से बच नहीं सकता। इस पहलू को कुछ और विश्लेषण के साथ समझाने की जरूरत है।

जहां हमने 'द्रव्य परिमाण मत' का जिक्र किया है वहां यह बतला दिया है कि अन्य सब स्थिति समान रूप से बनती हो तो जितना ही चलण में हम द्रव्य का अधिक प्रवेश करावेंगे उसी अनुपात से द्रव्य का मूल्य गिरेगा और जिन्सों के दाम बढ़ेंगे। इसका फिर एक उदाहरण दे देना अच्छा होगा।

मान लीजिए कि सामान्य अवस्था में हमारे यहां २५० करोड रुपए के नोट चलण में हैं, जिनकी सोने की कीमत १० करोड तोला सोना है। (एक तोला सोने की कीमत = २५ रुपए। इसलिए १० करोड तोला सोना × २५ = २५० करोड रुपए) तो यदि हमने चलण में २५० करोड रुपए के नोट और छाप कर डाल दिए, तो भी सोने की कीमत तो वही १० करोड तोले की रहेगी। पर चूंकि चलण में नोट अब ५०० करोड के हो गए इसलिए जहां पहले २५० करोड रुपए के नोटों की कीमत १० करोड तोला सोना थी अब ५०० करोड रुपए के नोटों की कीमत १० करोड तोला सोना रही—अर्थात नोटों की सोने की माप में जो कीमत पहले थी उससे आधी हो गई। इसके मानी यह भी हुए की जिन्सों की कीमत दुगुनी हो गई—अर्थात नोटों का चलण दुगुना हुआ उसके अनुपात से नोटों का मूल्य तो आधा रह गया पर जिन्सों का मूल्य दुगुना हो गया।

अब सरकार को जो नए २५० करोड़ रुपए नए नोट छापने के कारण हासिल हुए वह सारा-का-सारा धन उन लोगों की जेब से निकला जिनके पास चलण की धरोहर था—अर्थात् उन लोगों की जेब से निकला जो रुपया उधार देने का काम करते थे—जैसे बैंक, साहूकार इत्यादि, या वो जिन्हें क्रय-विक्रय के लिए भी अपनी जेब में कुछ नोट रखने पड़ते थे। इस २५० करोड़ की क्रय-शक्ति अवश्य ही पहले के मुकाबले में घट गई, क्योंकि जिन्सों के दाम जो चढ़ गए। पर जब फुलावट-नीति पहले-पहल शुरू होती है तब लोगों के खयाल के कारण जिन्सों के दाम एकाएक नहीं चढ़ जाते और इसलिए नए २५० करोड़ की क्रय-शक्ति भी शुरू-शुरू में पहले से बिल्कुल आधी शायद न होगी। अब सरकार इस तरह से यदि २५० करोड़ का कर उगाहती तो सैकड़ों झगड़े होते पचासों तरह का विरोध होता कर-कानून बनाना पड़ता। इसके विपरीत इस तरह से चुपचाप नोट छाप कर चलण में प्रवेश करा देने से सरकार ने चुपचाप अपना काम बना लिया।

इस कर से बचना असम्भव-सा है

कोई कह सकता है कि क्या इस कर से कोई बच भी सकता है? हाँ, कल्पना में बच सकता है पर व्यवहार में शायद ही। आखिर यह कर उन्हीं की जेब से निकलता है जिनके पास द्रव्य की धरोहर हो। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं यह कर एक तो इस तरह के लोगों की पॉकेट से निकलता है जो उधार रुपया देते हैं, दूसरे, उन लोगों जिन्हें क्रय-विक्रय के लिए रोजगार-धंधे के लिए कुछ-न-कुछ रुपया तो सिलक में रखना ही पड़ता है उनकी जेब से भी यह कर निकलता है।

अब ये दोनों तरह के लोग कर से इस तरह बच सकते हैं कि उधार देनेवाले तो उधार देना बन्द कर दें घर में जवाहरात इत्यादि रख छोड़ें, और क्रय-विक्रयवाले नोटों का व्यवहार तक करना छोड़ दें। पर यह नामुमकिन है। सूद पर उधार देनेवाले शायद उधार देना बन्द करके अपना धन जिन्सों में रोक दें पर नित्य की खरीद-फरोख्त के लिए रुपए का व्यवहार बन्द करना यह दवा मर्ज से भी कहीं ज्यादा कष्टप्रद है।

हम गहरे उतरने पर देखेंगे कि रोजमर्रा की खरीद फरोख्त के लिए जो रुपया हम उपयोग में लाते हैं उसके कारण हर व्यक्ति पर यह नई तरह का कर इतनी कम मिकदार में पड़ता है कि बजाय इसके कि वह रुपए का व्यवहार बन्द कर दे एक नागरिक इस कर को अदा करना अधिक पसन्द करेगा।

हम एक अन्तिम सीमा का उदाहरण ले लें। मान लीजिए सरकार चलन में इतना द्रव्य प्रविष्ट करती है कि जिसके कारण हर महीने द्रव्य का मूल्य करीब आधा ही रह जाता है। अब यदि रोजमर्रा के व्यवहार के लिए हर मनुष्य दो दिन से ज्यादा फरोख्त किए हुए माल का रुपया अपने पास नहीं रखता तो इसके माने यह हुए कि रुपए की एक महीने में १५ बार पल्टाई हुई—अर्थात् १५ बार भिन्न भिन्न कामों के लिए उसी रुपए का उपयोग हुआ। द्रव्य का मूल्य गिरा एक महीने में ५० प्रतिशत। रुपए की पल्टाई हुई एक महीने में १५ बार। तो ५० ÷ १५ = ३.३३। अर्थात् हर सौदे की लेवा बेची पर ३.३३ प्रतिशत कर पड़ा। यानि १०० रुपए में जिस सौदे को खरीदते उसके १०० + ३.३३, अर्थात् १०३.३३ रुपए असल में आपको देने पड़े। यह कर असाधारण जमाने के लिए इतना कम है कि केवल इससे बचने के लिए ही कौन रुपए का व्यवहार बन्द करेगा?

इसलिए जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इस कर से अत्यन्त विरोधी भी बच नहीं सकता, और निकम्मी से निकम्मी सरकार भी यह कर उगाह सकती है। असल में तो इस शस्त्र का उपयोग भी वही सरकार करती है जिसका दिवाला निकलने जा रहा हो। हां अल्प मात्रा में, और नियंत्रण के साथ तो उद्योग धंधों को पनपाने के लिए जैसा कि पहले बता चुके हैं हर अच्छी सरकार भी फुलावट नीति को समय-समय पर काम में लाती है।

पर यह भी सही है कि जिस तरह हर चीज की सीमा होती है वैसे ही इस शस्त्र की करामात के बारे में भी कहा जा सकता है। जब साख में लोगों की कोई श्रद्धा नहीं रहती तब लोग महज खरीद बिक्री के लिए और सो भी अत्यन्त कम समय के लिए ही अपने पास नोट रखते हैं।

नतीजा यह होता है कि चलण को व्यवहार में लानवाले इतन कम हो जाते ह कि फिर हजारों मन नोट छाप कर चलण में प्रविष्ट करने पर भी कोई लम्बी रकम सरकार का हासिल नहीं होती। इसलिए इस शस्त्र की धार भी अन्त में करीब करीब झूठी सी पड जाती ह।

एसी भयकर फुलावट का एक परिणाम और होता ह। सरकार का कज तो अपने आप चुक जाता ह। जब द्रव्य का मूल्य इतना गिर जाय कि रुपया एक कौडी का भी न रहे तो फिर हजारो अरबो का देना पावना भी केवल हिसाब-बहियो की शोभा की चीज रह जाता ह और इस तरह सरकार का कज अपने आप रफा हो जाता ह। चूकि सारा-का-सारा यह कर द्रव्य के धरोहरधारी की जब से निकला इसलिए इसे हम यदि पूजी कर की भी उपमा दें तो यह अनुपयुक्त उपमा न होगी। पर यह पूजी कर धुमा के नाक पकडन-जसी चीज ह। सीध रास्त स पूजी कर लगान में मनुष्य शास्त्रीय विधि का उपयोग कर सकता ह। पर लुढकती हुई सल्तनत में सीधा माग अख्तियार करन की हिम्मत कहा? इसलिए यह अशास्त्रीय और भद्दा माग एसी विपद्ग्रस्त सरकार क लिए ज्यादा आसान होता है।

हमने अबतक फुलावट नीति की चर्चा की। उससे पाठक के दिल पर यही असर होगा—और वह स्वाभाविक है, क्योंकि सारे विवेचन में ध्वनि भी यही निकलती है—कि फुलावट या गिरावट की क्रिया का सचालन केवल सरकार या नोट प्रसारक बक के हाथ में ही रहता है। किन्तु यह बात अंशत ही सही है। हद दरजे की भयकर फुलावट या गिरावट का सचालन तो अवश्य हो या तो सरकार कर सकती है या उसके इशारे से नोट प्रसारक बक। पर एक सीमा के भीतर, फुलावट या गिरावट अन्य बक या अन्य साहूकार भी पदा कर सकते हैं।

हमने बतलाया है कि धन का प्रतीक मुद्रा, मुद्रा का प्रतीक नोट और नोट का या मुद्रा का प्रतीक चेक या हुडी हो जाती है। जिस आसामी की साख अच्छी है उसकी हुडी भी धन ही है। फुलावट या गिरावट नोटो के अधिक विस्तार या सकोच से पदा होता है क्योंकि नोट धन के प्रतीक हैं। तो उसी तरह चेको और हुडियो द्वारा भी तो धनका प्रसार या सकोच किया जा सकता है, क्योंकि यह भी तो धनके प्रतीक हैं। वह इस तरह होता है—

मान लीजिए एक बक है या एक साहूकार है। उसके पास रुपया सिलक म नकद पड़ा है, अथवा सरकारी कागजो में कम ब्याज म दका पड़ा है। न तो वह अक्रिय रकम किसी तरह के वाणिज्य व्यवसाय में लगती है न एन देन में काम आती है। उधार लेनवालो की कमी नहीं पर उन्हें बक या साहूकार की उस अक्रिय पूंजी स कोई लाभ नहीं मिल रहा है। अब व्यापार को पनपते देखकर पूजी के स्वामी उस बक या साहूकार की रुपया उधार देन की इच्छा होती है। वह व्यापारियो एव अन्य उधार लेनवालो को रुपया देना शुरू करता है और इस तरह उस धन का उपयोग होने लगता है। अक्रिय रकम अब सक्रिय बन जाती है और जितनी ही रकम सक्रिय बनती जाती है उतनीही बाजार में नाणकी बहुतायत होती जाती है।

उधार की फुलावट

इस बहुतायत का वही असर होता है जो नोट प्रसार के कारण होता है

बल्कि नोट प्रसार से पैदा हुई फुलावट की अपेक्षा उधार-द्वारा की गई फुलावट कभी-कभी ज्यादा शक्तिशाली भी होती है। एक करोड़ रुपए का नया नोट हम चलण में डालते हैं और सौ करोड़ का नोट पहले से चलण में है तो साधारणतया यह कहा जा सकता है कि एक प्रतिशतक फुलावट हुई और उसका साधारणतया (यदि और कोई नया मसला उलट फेर का मौजूद न हो तो) उसी परिमाण में दामों पर भी असर होना चाहिए। पर उधार-द्वारा एक करोड़ की पूंजी यदि नाए के बाजार में प्रवेश करती है तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसका दामों पर असर, एक करोड़ की फुलावट के अनुपात में ही होगा।

हम कल्पना कर सकते हैं कि किसी आसामी के पास एक लाख का गल्ला पड़ा है जिसपर उस आसामी की रकम लगती है। उसे रुपया उधार न मिलने की वजह से उसका हाथ रुका पड़ा है। उस अवालंब बैंक से रुपए उधार मिल जाते हैं। अब उसका हाथ खुला हो जाता है। एक लाख रुपए से वह एक तेल का कारखाना खोलता है। उसे अब सरसों की जरूरत पड़ती है। सरसों बचनेवाले आसामी के पास मुद्दत से सरसों पड़ी थी, वह बिक नहीं रही थी। उसे बेच कर सरसों वाला आसामी एक बर्तन बनाने का कारखाना खोल देता है। उसके लिए तांबा खरीदना है। तांबेवाले आसामी के पास मुद्दत से तांबा पड़ा था जो बिक नहीं रहा था। तांबा बिकते ही वह नया माल खरीदने लगता है। नया माल खरीदने से मालवाला काम बढ़ाता है। चारों तरफ से मजदूरों की मांग होने से ठलुए मजदूरों को काम मिलता है। वे फिर ज्यादा कपड़ा खरीदने लगते हैं, तो कपड़े की पैदाइश बढ़ती है। उसके मानी है—ज्यादा मजदूरों की मांग, ज्यादा रुई की जरूरत। बस इस तरह से बाजार की रौनक जो फीकी हो चली थी, फिर चमकती है। उस चमक का दूसरी चीजों पर प्रभाव पड़ता है। इस तरह उत्पन्न हुई आशावादिता चारों ओर प्रभाव डालती है और थोड़ी-सी रकम से बड़ी सी फुलावट भी आ सकती है।

हमने यह उदाहरण इसपर काफी रंग चढ़ाकर पेश किया है। ऐसा ही होता है सो नहीं, पर ऐसा हो सकता है, इतना ही बताना है। गरज,

यह है कि उधार से पैदा हुई फुलावट कभी-कभी अपने अनुपात से ज्यादा काम कर जाती है, क्योंकि उसके पीछे एक भावना रहती है, जो लोगों में आशा का सचार करके कभी कभी आवश्यकता से अधिक सरगर्मी ला देती है। इसी तरह जब बैंक अपना उधार सिमेटती है तो आवश्यकता से ज्यादा सुस्ती भी पैदा कर देती है।

अब हम देख सकते हैं कि उधार द्वारा भी धन का विस्तार और सकोच और तज्जनित फुलावट या गिरावट पैदा की जा सकती है।

नोटों के प्रसार और सकोच से जो काम होता है, एक तरह से उधार के विस्तार और सकोच से भी वही काम होता है। दोनों चीजें एक तरह से तो एक ही हैं, क्योंकि दोनों के द्वारा धन का सकोच या विस्तार हो सकता है। पर बैंको या साहूकारों द्वारा धन का विस्तार अर्थात धन का चलण में प्रवेश तभी होता है, जब कि व्यापार चलता हो या तो अच्छे चलने की आशा हो, कारखाने वाले कमाते हों, भविष्य उज्ज्वल दिखता हो। रुपया उधार देने में किसी तरह का खतरा न लगता हो तभी उधार का विस्तार होता है। साख एक नाजुक चीज है जो लाजवंती पौधे की तरह खतरे की आशका होते ही अपने डाल पात को समेट लेती है। जहा समय अच्छा आया, व्यापार पनपने लगा कि पूजीवाले उधार देने में बहादुरी दिखाने लगते हैं और जहां खतरे की घटा बधी कि वे अपना बोरिया-बधना उठाने लगते हैं। इस तरह से उधार देनेवाले भी फुलावट और गिरावट के कर्ता बन जाते हैं। इस फुलावट या गिरावट को साख की फुलावट या गिरावट भी कह सकते हैं।

पर यह उधार की फुलावट या गिरावट सीमा के भीतर ही रहती है। किसी पूंजीवाले के पास अगनित धन तो होता नहीं, सख्याबद्ध धन ही होता है। इसलिए बैंक या साहूकार-द्वारा की गई फुलावट या गिरावट भी सीमा के भीतर बद्ध रहती है।

फुलावट-नीति का इतने विस्तार के साथ जिक्र किया। गिरावट का इतने ज्यादा जिक्र नहीं किया है। पर शायद यह समझाने की जरूरत नहीं कि गिरावट का परिणाम हर बात में फुलावट से उल्टा होता है।

विपद्ग्रस्त सरकार धन उगाहने के लिए—चारों तरफ से उसकी चाल रुक जाती है तब—फुलावट-नीति का आसरा लेती है या तो स्वस्थ और नियमित मात्रा में फुलावट उद्योग धंधों को पनपाने के लिए भी काम में लाई जाती है।

तो फिर यह प्रश्न हो सकता है कि गिरावट-नीति का दौरदौरा कब होता है?

गिरावट-नीति आम तौर से ऐसी दशा में प्रयोग में लाई जाती है जबकि सरकार तो व्यवस्थित है और अवस्था के साथ विशेष हेतु के लिए उस सरकार ने फुलावट-नीति का प्रयोग किया है, पर मात्रा से कुछ ज्यादा फुलावट हो गई है और इसलिए फुलावट का जोर ठंडा करने के लिए अवस्था के साथ सब कुछ गिरावट-नीति के प्रयोग की आवश्यकता है। ऐसी आवश्यकता पड़ने पर गिरावट-नीति का उस प्रयोग किया जाता है।

पर जब फुलावट कमजोरी की चीज है वहाँ ही गिरावट इस बात की द्योतक है कि सरकार शक्तिसम्पन्न है, उसकी ताकत या व्यवस्था में कोई कमजोरी नहीं है। गिरावट में तो चलण की मांग बढ़ानी पड़ती है। इसलिए यह काम एक व्यवस्थित सरकार ही और सो भी विशेष हेतु के लिए ही कर सकती है। यह इसलिए स्वाभाविक है कि जिस तरह फुलावट असीमित हो सकती है वैसे गिरावट सीमा के बाहर नहीं जा सकती।

पर गिरावट नीति के प्रयोग के उदाहरण संसार के आर्थिक इतिहास में कम मिलते हैं। ज्यादातर मालों ने विवश होकर या तो देश के उद्योग धंधों की उन्नति के लिए, फुलावट-नीति का ही प्रयोग किया है।

इसलिए फुलावट-नीति के गुण दोषों का हम अच्छी तरह विवेचन कर लें तो काफी है, क्योंकि जो हानि लाभ फुलावट के हैं उसको ठीक तरह समझने के बाद गिरावट के गुण दोष अपने आप समझ में आ जायंगे।

जब गिरावट-नीति का प्रयोग होता है तब फुलावट नीति से ठीक उल्टे नियमों को काम में लाया जाता है—अर्थात् किसी भी बहाने नोटों को चलन में से निकाल कर नोटों की एक बनावटी तंगी पैदा की जाती है। सरकारी खर्च के लिए, मान लीजिए, आवश्यकता है एक सौ करोड की और कर-वसूली की गई सवा सौ करोड की तो जनता के पास से पचीस करोड का धन खेंच लिया गया। और इसी परिमाण में जनता की क्रय शक्ति कम हो गई या तो ब्याज ऊंचा देकर बिना किसी हेतु के सरकार ने पचीस करोड का ऋण ले लिया और उसे खर्चने के बजाय कोष में ही रख छोडा। तो इसका भी वही असर पड़ा—अर्थात् जनता की क्रय शक्ति कम हो गई।

गिरावट कब वांछनीय है ?

जनता की क्रय शक्ति को कम करने की यह नीति एक तरह से तो दम घोटने की नीति-जैसी लगती है। इसलिए ऐसी नीति को काम में लाना तभी वांछनीय हो सकता है जब कि सल्तनत को यह लगे कि जनता समृद्ध है और समृद्धि के नशे में वित्त शाठ्य करने जा रही है—अर्थात् बूते के बाहर खर्च करने की या व्यवसाय करने की जन-साधारण की प्रवृत्ति बढ़ रही है, जिसका आगे जाकर परिणाम भयानक हो सकता है। जब सरकार को ऐसी विपत्ति की आशंका होती है तभी, जैसे दूध के उफान को ठंडा करने के लिए पानी के छींटे दिया जाता है उसी तरह समृद्धि के उफान को—समृद्धि को नहीं क्योंकि समृद्धि तो ठोस असली चीज है उफान धोखा है—आवश्यकतानुसार गिरावट का प्रयोग करके शान्त करना प्रजाप्रिय सरकार का कर्तव्य बन जाता है।

सरकार ने कर-वसूली से या ऋण-द्वारा जो धन जनता से खेंचा उसका आखीर तो व्यय ही करना है। और वह व्यय उस समय किया जाता है जब कि उफान के बाद की सुस्ती के मारे जनता भयभीत होकर

अपनी सारी प्रगतियों को बन्द कर देती है, व्यय में आवश्यकता से ज्यादा कंजूसी करने लगती है, व्यापारी मंदी से भयभीत होकर अपने हाथ-पांव सिमट लेते हैं, बेकारी बढ़ने लगती और जिन्सों के दाम गिरने लगते हैं। ऐसे समय में जनता को फिर प्रोत्साहन देने के लिए प्रतिरोध आई हुई मन्दी को शान्त करने के लिए ठंडे खून में फिर से गर्मी लाने के लिए, जनता से खींचा हुआ धन सरकार खर्चने लगती है। और जहां खर्च शुरू हुआ कि फिर ताजगी आने लगती है।

इसके यह मानें नहीं कि हिंदुस्तान में सरकार ने जो गिरावट का प्रयोग किया वह इसी सिद्धान्त पर किया और जब मंदी ने तबाही शुरू की तब उसको रोकने के लिए फिर फुलावट का प्रयोग किया। यहां की कथा तो निराली है।

इस देश में गिरावट नीति अक्सर इसलिए काम में लाई गई है कि द्रव्य के परिमाण में कमी करके उसका मूल्य ऊंचा कर दिया जाय।

आगे जब हम भारतवर्ष की हुण्डी का विवेचन करेंगे तब गिरावट नीति से इस देश की जिन्सों के दामों पर, कल-कारखानों पर, समृद्धि पर और आयात निर्यात पर क्या असर हुआ, गिरावट की नीति को सफल बनाने के लिए कैसे करोड़ों रुपए बरबाद किए गए इन सब बातों का विवेचन करने के लिए हमें काफी मौका मिलेगा।

फुलावट से दामों में तेजी, गिरावट से मन्दी, यह हमने बतलाया है। और फुलावट या गिरावट मुख्यतया सल्तनत की मर्जी की चीज है। कम से कम सरकार सहीसलामत रहे तो बवसी की फुलावट को तो हम अनहोनी चीज करार दे सकते हैं। इसलिए सीमाबद्ध फुलावट या गिरावट सरकार की मनसा पर अवलम्बित रह जाती है। तो फिर यदि फुलावट से तेजी और गिरावट से मन्दी होती है तो दाम करीब करीब स्थिर रखने के लिए भी कभी फुलावट तो कभी गिरावट की चाभी घुमाई जा सकती है। दूसरे शब्दों में दाम स्थिर रखने के लिए भी इन दोनों तरकीबों का उपयोग किया जा सकता है। और दाम स्थिर रहना, यह भी तो समाज के लिए एक बड़ा लाभ है।

हम पहले बता चुके हैं कि दामों की तेजी से माल उपजानेवालों का *लाभ और बधा आय वालों को नुकसान है। दामों की मन्दी में इससे उल्टा।* पर इस तेजी मन्दी के उलट फेर से कभी किसीको लाभ और कभी हानि से सामाजिक असन्तोष फैलता है जो बुराई तो है ही पर इस असन्तोष के साथ-साथ पैदाइश पर भी बुरा असर पड़ता रहता है। धीरे धीरे *लगातार तेजी चलती है तो पैदाइश बढ़ती रहती है पर फिर जब दामों* में मंदी आती है और दाम गिरते हैं तो कारखानों को ताला लगने लगता है, बेकारी बढ़ती है और इससे समाज में गरीबी आने लगती है। उससे असन्तोष बढ़ता है। सम्भव है दाम स्थिर हों—कम से कम एक परिधि के भीतर—तो शायद इस परिस्थिति से पैदाइश की वृद्धि भी हो और समाज के विभिन्न फिरकों में दामों की घटा बढ़ी से पैदा हुआ असन्तोष भी न होने पाए। इसी भावना से प्रेरित होकर कई अर्थशास्त्री दामों की साम्यावस्था की पुष्टि करते हैं।

दामों की साम्यावस्था

दामों की साम्यावस्था से इतना ही प्रयोजन है कि दाम के सूचक

अंक (Index Figure) की साम्यावस्था। यह तो नामुमकिन चीज है कि हम सब जिसों के अलग अलग दामों की घटा-बढ़ी को रोक सकें। मान लीजिए एक साल गेहूं की फसल बहुत बढ़िया बैठी और सरसों की फसल मारी गई। तो गेहूं की बहुतायत से गेहूं की मन्दी और सरसों की कमी के कारण सरसों की तेजी अवश्यम्भावी है। इसे कोई नहीं रोक सकता। पर अलग अलग चीजों की तेजी या मन्दी एक बात है और सम्मिलित दामों की तेजी या मन्दी दूसरी बात। जब सम्मिलित दामों की तेजी या मन्दी आती है तभी समाज के एक अंग को लाभ और दूसरे को हानि होती है। इस सम्मिलित दामों की तेजी या मन्दी का गिरावट या फुलावट की नीति द्वारा काफी दर्जे तक रोका जा सकता है। वह इस तरह —

सरकार दामों के सूचक अंकों का अध्ययन करती रहती है और जहां दाम कुछ बढ़े कि नोट प्रसारक बैंक चलण में से नोटों को निकाल कर धन का संकोच शुरू कर देती है जहां दाम गिरे कि नोटों का चलण बढ़ाकर विस्तार कर देती है। इस तरह से संकोच विस्तार-द्वारा दामों का यथासाध्य साम्यावस्था में रखने की कोशिश की जाती है। और उसमें उसे साधारणतया सफलता भी मिलती है। इस सारी क्रिया को विस्तार से समझाने में छोटी मोटी अन्य कई क्रियाओं का भी उल्लेख करना पड़ेगा। चूंकि पाठकों के सामने एक मोटी सी रूप रेखा रखना ही इस पुस्तक का ध्येय है इसलिए ज्यादा ब्यौरे में उतरना आवश्यक नहीं है। बतलाना इतना ही है कि फुलावट गिरावट की नीति से दामों में तेजी मन्दी और साम्यावस्था तीनों चीजें लाई जा सकती हैं।

पर दामों को साम्यावस्था में रखने के और भी तरीके हैं। एक तरीका तो त्याग करके इसी महायुद्ध में बहुतायत से काम में लाया गया है। यह तरीका नया नहीं है पर इतने विस्तार से इसी युद्ध में काम में लाया गया है इसलिए इसे नया कहना भी कह सकते हैं। यह तरीका है मालकी उपज सामान और दामों का नियंत्रण करना।

जब हम नोट प्रसार अधिकता से करके दामों की तेजी को प्रोत्साहन देते हैं या तो कम करके दामों की मंदी का आह्वान करते हैं तो

एक तरह से हम दामों की तेजी या मंदी पर सीधा हल्ला न बोलकर ऐसे टेढ़े मेढ़े उपायों का प्रयोग करते हैं कि जिससे जनता की क्रय शक्ति कमोवेश होकर चीजों की उपज और खपत पर अपने आप अच्छा या बुरा असर पड़ता रहे।

जनता के पास क्रय शक्ति है और वह उसका उपयोग करके दामों को तेज करना चाहती है। उस क्रय शक्ति को हमने कर द्वारा या उधार लेकर अपने कब्जे में कर लिया। फलस्वरूप अब जनता बाजार से हट जाती है और दाम गिर जाते हैं। या तो जनता की क्रय शक्ति का ह्रास हो गया और इसलिए बाजार में सन्नाटा छा गया। सल्तनत ने नए नए खर्च करना शुरू करके जनता की क्रय शक्ति बढ़ा दी और जनता फिर बाजार में खरीदने के लिए आ धमकी और इस तरह बाजार में फिर जान आ गई। यह गिरावट या फुलावट का एक तरीका है दामों को घटाने और बढ़ाने का।

पर मान लीजिए कि आपके पास बेशुमार दौलत पड़ी है। उसको किसी ने नहीं छीना। पर आप पर यह रोक लगा दी कि आप अमुक परिमाण से ज्यादा किसी भी हालत में किसी भी वस्तु को खरीदने नहीं पावेंगे और न दूकानदार बिना सरकारी इजाजत के आपको कोई चीज बेचेगा। तो फिर इसका परिणाम भी वही होता जाता है जो चलण की कमी-बेशी से पैदा किया जाता है क्योंकि आपके पास शक्ति होते हुए भी आप खरीद के हकदार नहीं रहे। यदि सरकार इस तरह की सारी हलचलों का नियंत्रण कर डाले कि अमुक चीज की इतनी पैदाइश होगी हर मनुष्य अमुक मिकदार ही अमुक चीज की खरीद और खपत कर सकेगा बेचनेवाले और लेनेवाले अमुक बंधे हुए दाम पर ही खरीद और फरोख्त कर सकेंगे और जो कोई सरकारी हुक्मउदूली करेगा उसे सजा भुगतनी पड़ेगी तो फिर चाहे किसी के पास असंख्य धन क्यों न पड़ा हो वह धन बेकार सा बन जाता है और उसकी नियमित क्रिया के कारण दामों की घटा-बढ़ी भी नियंत्रित हो जाती है। अवश्य ही यह दूसरा तरीका, दामों की साम्यावस्था लाने का ज्यादा सीधा है — आड़ा टेढ़ा नहीं है — पर इससे यह मान नहीं कि यह ज्यादा वाञ्छनीय है।

नियंत्रण

इस तरीके में योजना और संचालन के लिए अफसरों और कारिन्दों का एक बड़ी सेना को रखना पड़ता है जो रात दिन इसी ताक झांक में रहती है कि किसी ने इस नियम का भंग तो नहीं किया। इतने नागरिकों को केवल योजना और संचालन के लिए रोक रखना यह भी देश की समृद्धि के लिए एक हानिकर चीज है। आखिर जब तक हर आदमी कुछ पैदाइश करता रहता है तभी तक देश की समृद्धि बढ़ती है। यदि सब लोग संचालन में वाद विवाद में न्याय और पुलिस में और ऐसे अन्य बेउपजाऊ धंधों में ही लगे रहें तो फिर समृद्धि कहां ? इस दृष्टि से वही तरीका अच्छा है जिसमें कम-से-कम आदमियों की शक्ति का ह्रास हो। पर युद्ध-काल में इन सब नियमों की अवहेलना करनी पड़ती है। उस विकट समय में व्यय की अपेक्षा साधन गौण बन जाता है। इसलिए ऐसे नियंत्रणों का उपयोग विकट काल में ही वांछनीय माना जाना चाहिए। यद्यपि रूस में शांति समय में भी नियंत्रण का उपयोग किया गया है पर रूस के सम्बन्ध में तो यह भी कहा जा सकता है कि वहां शांति का समय आया ही नहीं—विकट समय का ही दौर-दौरा रहा और इसलिए वहां नियंत्रण नीति अभीष्ट ही थी। जो हो दामों की साम्यावस्था नियंत्रण से भी लाई जा सकती है यह सब पाठक समझ सकेंगे।

\+ \+ \+

अब पाठकों से विदा लेता हूं।

(उत्तर भाग)

इतिहास

अनेक की जगह एक

मुद्रा का अर्थ चिह्न है। बहुत काल पहले जब सिक्कों के लिए चांदी या सोने के टुकड़ों का व्यवहार बढ़ा तब यह आवश्यक हो गया कि वे टुकड़े ठीक तौल के हों और प्रमाणस्वरूप उनपर कोई चिह्न बना दिया जाय। इस प्रकार सिक्के का नाम मुद्रा हो चला।

प्रश्न उठता है कि मुद्रा-सम्बन्धी कला इस देश की अपनी उपज थी या वह कहीं बाहर से आई?

यहां के सिक्कों की तौल और बनावट दोनों ही निराले ढंग के हैं और धीरे धीरे इस मत की पुष्टि होती जा रही है कि भारत ने इस विषय में न तो किसीकी नकल की, न किसीको अपना गुरु माना। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका" (भाग १९९७) में प्रकाशित स्व० दुर्गाप्रसाद जी का लेख इस सम्बन्ध में पढ़ने लायक है। आप लिखते हैं—'मुझे जहां तक खोज करने का अवसर मिला है इसका प्रमाण मिला है कि भारत में गौतम बुद्ध से पहले सिक्कों का चलन था। उस समय के सिक्के मुझे प्राप्त भी हुए हैं आपके लेख से पता चलता है कि गौतम बुद्ध के समय में चांदी के सिक्कों की तौल ४० और २४ रत्ती होती थी। पण कार्षापण—ये चांदी के तत्कालीन सिक्कों के नाम थे। सिक्कों पर पहले किसी राजा की मूर्ति या उपाधि अंकित करने की प्रथा नहीं थी, केवल कुछ चिह्न—जैसे हाथी, कुत्ता या वृक्ष—ठप्पों से अंकित कर दिये जाते थे। ईसा के पूर्व दूसरी शताब्दी से अक्षरों का प्रयोग होने लगा। कुछ समय तक प्राकृत का बोलबाला रहा। फिर देवनागरी या हिन्दी का प्रयोग होने लगा। चांदी का रुपया चलानेवाला शेरशाह था। उसके सिक्कों पर फारसी के साथ हिन्दी का भी स्थान प्राप्त था। उसके बाद इस्लामशाह के समय में भी यही बात रही। श्रीयुत दुर्गाप्रसाद जी लिखते हैं—"इनके समय तक तो मुद्राओं पर हिन्दी को बराबर स्थान

मिला पर जब मुगल बादशाह बाबर, हुमायूं और अकबर ने अपने अधिकार जमाए और सिक्के चलाए तो उन्होंने पहले कूफी अक्षरों में अपने नाम सिक्कों पर लिखे। हुमायूं ने पहले-पहल फारसी अक्षरों का प्रचार भारत में किया। उसके पहले फारसी अक्षरों को, जिसमें उर्दू लिखी जाती है, यहां कोई नहीं जानता था। अकबर और उसके बाद जहांगीर शाहजहां औरंगजेब इत्यादि सभी बादशाहों ने फारसी का प्रचार किया। राजकाज सब फारसी में होते रहे। सिक्कों पर भी फारसी अक्षरों को जगह दी गई और हिन्दी देवनागरी को हटा दिया गया।"

भारत में सोने के सिक्कों का प्रचार भी अत्यन्त प्राचीन काल से है। उन्हें निष्क पाद आदि कहते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि संसार में पहले पहल सिक्के के लिए सोने का ही प्रयोग होता था, क्योंकि सोना सुलभ था और चांदी दुर्लभ। सोना जहां मिलता था वहां सोने के ही रूप में उसे अलग करने के लिए कोई विशेष परिश्रम या प्रयास नहीं करना पड़ता था, पर चांदी की बात और थी वह दूसरे खनिज द्रव्यों के साथ इस प्रकार मिश्रित थी कि उसे निकालना या हासिल करना जरा टेढ़ा काम था। कहते हैं कि उस युग में सोने से चांदी का मूल्य कहीं अधिक था। क्रमशः चांदी निकालने के ज्ञान या विज्ञान की उन्नति होती गई और चांदी की दुर्लभता मिटती गई। कुछ काल बाद स्थिति बिलकुल बदल गई। चांदी सुलभ हो चली और सोना दुर्लभ। मालूम नहीं, इस देश में इनका क्या क्रम रहा। पर इतना निश्चित-सा जान पड़ता है कि प्राचीन काल में यहां सोना, चांदी की तुलना में सस्ता था। फौलर कमेटी के सामने बयान देते हुए अंग्रेज अर्थशास्त्री मि० मैकलियड ने कहा था—

'अति प्राचीन काल में भारतवर्ष सुसभ्य था, और पाश्चात्य देश असभ्य या बर्बर। उस समय भारतवर्ष को विदेशी वस्तुओं की कोई खास जरूरत नहीं थी और वह बिना सोना या चांदी पाए अपना माल बेचने को तैयार न था। पर भारतवर्ष में सोना और देशों की अपेक्षा सस्ता था—ईरान में १३ भाग चांदी एक भाग सोने के बराबर होती थी और

भारतवर्ष में ८ भाग चाँदी एक भाग सोने के। लिहाजा भारत में बाहर से चाँदी बहुत बड़े परिमाण में आया करती जिसके बदले में यहाँ से या तो सोना बाहर जाता या दूसरा माल।

सोने चाँदी के इतिहास में अमेरिका का पता चलना (१४९२) एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। यूरोपवालों को मानो कुबेर की निधि हाथ लग गई। वहाँ सोने या चाँदी का—पर विशेषतः चाँदी का—एक साधारण नाला-सा बहता था वहाँ, समुद्र नहीं तो एक जबर्दस्त दरिया लहरें मारने लगा। थोड़े ही समय में यूरोप की भूमि इनसे परिप्लावित हो चली और वहाँ के आर्थिक-जगत में पूरा इनकिलाब नजर आने लगा। मानो फलक पर रात में दाना बदल गया।

१४९३ और १८०० के बीच सोने और चाँदी के उत्पादन का तखमीना यह है—

	सोना (लाख औंस)	चाँदी (लाख औंस)
१४९३-१६००	२३०	७ ४७०
१६०१-१७००	२९०	१२ ३७०
१७०१-१८००	६१०	१८ [illegible]
	१,१३०	३८ ५२०

उत्पादन की दृष्टि से १६ वीं सदी में सोने और चाँदी का पारस्परिक अनुपात १:३२ था—अर्थात् जितना सोना निकला उससे ३२ गुना अधिक चाँदी निकली। १७ वीं सदी में यह अनुपात १:४४ हो चला। पारस्परिक मूल्य का अनुपात पहले १:११ था—अर्थात् एक भाग सोना प्रायः ११ भाग चाँदी के बराबर होता था। पर यह अब प्रायः १:१५ हो चला, और प्रायः दो सौ साल तक—अर्थात् १९ वीं सदी के पिछले भाग तक—यही कायम रहा।

इस देश में यूरोप से चाँदी का आयात अब और भी अधिक हो चला। विदेशी कम्पनियों—मुख्यतः ईस्ट इंडिया कम्पनी—का इस व्यापार पर एकाधिपत्य-सा था। उधर बंगाल बिहार में—और अन्यत्र भी—जो आर्थिक-राज्य के अधिपति थे मुर्शिदाबाद के जगत्सेठ। नवाब ने इन्हें

टकसाल का इजारा दे रखा था। लेहाजा चादी के सबसे बड़े खरीदार यही थे। ईस्ट इडिया कम्पनी और जगतसेठ के घराने के बीच के लेन देन के सम्बन्ध पर और तत्कालीन व्यापारिक अवस्था पर यह अवतरण अच्छा प्रकाश डालता है —

(१७४६) अक्तूबर में विलायत से कुछ चादी आई। कौसिल के आग्रह करने पर (जगतसेठ) महताबराय ने उसे खरीद लिया। इससे कम्पनी को कई लाख रुपए तत्काल मिल गए और कुछ दिनों तक उसे कर्ज लेने की जरूरत नहीं पड़ी। पर नया साल शुरू होते ही अवस्था फिर बदली और ढाका के कर्मचारियों ने कौंसिल से रुपया मागा। इसी समय कुछ चादी आ पहुची। कौंसिल ने उसे कासिमबाजार भेज दिया। वहा वह महताबराय को बेच दी गई और उसके पटे कम्पनी को डेढ लाख रुपया मिल गया। पर यह रुपया कासिमबाजार की कोठी को न मिला इसकी वहावाला ने शिकायत की और कौसिल को लिखा— ऐसे समय में जब कि हमपर कर्ज का इतना भारी बोझ है और कम्पनी की साख इतनी कम रह गई है आपने यह रुपया मगाकर अच्छा काम नहीं किया। महाजन पहले से ही अधीर हो रहे थे, मालूम नहीं, अब वे क्या कर बैठेंगे।' कौसिल ने उन्हे लिखा कि हम और चादी शीघ्र ही भेजने वाले हैं। चादी कासिमबाजार भेजी गई पर महताबराय ने उसे उसी दम लेने से इनकार कर दिया। ईस्ट इडिया कम्पनी के पुराने कागजात से जाहिर होता है कि रुपए की टान उस समय काफी थी और जगतसेठ ने चादी का दाम घटा दिया था। वह १७४७ के उत्तरार्द्ध में २४० सिक्के रुपए भर चादी के लिए २०१ रुपए से अधिक देने को तयार न थे। कम्पनी अपनी चादी उनके हाथ बेचती जाती और बराबर दाम बढाने के लिए आग्रह करती जाती।

पलासी की लड़ाई में विजय पाकर ईस्ट इडिया कम्पनी बगाल बिहार का और धीरे धीरे सारे भारतवर्ष का, भाग्यविधाता बन बैठी। जगत् सेठों ने इस राज्यक्राति को सफल बनाने में प्रमुख भाग लिया था और कम्पनी की तन-मन धन से सहायता की थी, पर उन्हे अन्त में लेने के देने पड़ गए और कहना चाहिए कि पलासी के मैदान की रचना बराबर

उन्होंने अपने ही विनाश के बीज बोए। आर्थिक और राजनैतिक दोनों ही क्षेत्रों में सर्वेसर्वा ईस्ट इंडिया कम्पनी बन बैठी और जगतसेठ उपाधि उस घराने की विपुल सम्पदा और प्रभुता का स्मारक मात्र रह गई।

पर चाँदी के सिक्कों का प्रचार विशेषतः उत्तर भारत में ही था। दक्षिण में प्रधानता सोने के सिक्कों की थी।

संस्कृत में चाँदी को रूप्य या रौप्य कहते हैं। अष्टाध्यायी में एक विशेष प्रकार की मुद्रा के लिए 'आहत रूप्य' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसी रूप्य या रौप्य का अपभ्रंश रुपया है। १८३५ से पहले इस देश में तरह-तरह के रुपए प्रचलित थे। इनमें कुछ के नाम-धाम इस प्रकार थे—

१—पुराने सिक्के (१७९२–१८१७)
२—नए सिक्के (१८१८–१८३२)
३—पुराने और नए फर्रुखाबादी रुपए जो फर्रुखाबाद, बनारस और सागर की टकसालों में ढले थे।
४—फर्रुखाबादी रुपए जो कलकत्ते की टकसाल में ढले थे।
५—मद्रासी रुपए।

सोने के सिक्कों का भी यही हाल था। इस बहुतायत और विभिन्नता से बड़ी अड़चनें पैदा होती थीं—लेन-देन व्यापार के मामले में यह अनेकता प्रबल बाधक का काम करती थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी की ओर से जो कलक्टर नियुक्त होते थे उन्हें चाँदी के कम-से-कम ६० और सोने के कम से कम ७२ सिक्के माल या लगान के रूप में भाव से लेने पड़ते थे। बंगाल का यह हाल था कि एक जिले में जो रुपया चलता वह दूसरे जिले में नहीं।[1] यह भी नहीं कि एक जिले के अन्दर एक ही प्रकार के सिक्के का चलनवाला हो। अलग अलग चीजों के लिए अलग अलग सिक्के थे। और घिसाई की मात्रा न्यूनाधिक होने के कारण सिक्कों पर बट्टे का हिसाब भी अलग अलग था। चाँदी और सोने का पारस्परिक सम्बन्ध भी एक-सा नहीं रहता था—कभी सोना सस्ता हो जाता कभी चाँदी।

[1] कम्पनी की टकसालों में रुपए की ढलाई कल-द्वारा होती थी, इसलिए उसका नाम कलदार पड़ा।

इनमें जो चीज सस्ती होती वह तो चलन में रह जाती, और जो महगी होती वह निकल जाती। इन सारी अड़चनों और कठिनाइयों को दूर करने के लिए मुद्रा-सम्बन्धी सुधार आवश्यक था, और वह सुधार था अनेकता की जगह एकता का स्थापन। भारतवर्ष का अधिकांश एक राजछत्र की छाया में आ चुका था इसलिए वह सुधार अब उतना कठिन भी नहीं रह गया था। कहना चाहिए कि शासन सम्बन्धी एकता के बाद मुद्रा सम्बन्धी एकता आने ही वाली थी।

कम्पनी के डाइरेक्टरों ने इस विषय में अपना मत प्रकट करते हुए १८०६ में मद्रास सरकार को लिखा कि भारतवर्ष का प्रधान सिक्का चांदी का होना चाहिए जिसका वजन १८० ग्रेन (एक तोला) हो और जिसमें १६५ ग्रेन खालिस चांदी हो। उनकी राय थी कि प्रधानता चांदी के सिक्के की रहे पर सोने का चलन भी बन्द न हो। साथ ही वे इन दोनों के बीच कानूनन कोई सम्बन्ध स्थापित करना नहीं चाहते थे। उनका प्रस्ताव था कि सोने का मूल्य उसके परिमाण और उसकी मांग पर अवलम्बित हो।

पर प्रायः ३० साल तक मुद्रा सम्बन्धी एकीकरण का प्रस्ताव प्रस्ताव ही रहा। उसको विधान का रूप मिला १८३५ में जिससे दो साल पहले बंगाल के गवर्नर-जनरल सारे देश के गवर्नर जनरल बनाए जा चुके थे और शासनसत्ता पूरी तरह केन्द्रीभूत हो चुकी थी। उस साल १७ मई को सरकार की ओर से यह घोषित किया गया कि भारतवर्ष का जितना भाग ब्रिटिश छत्रच्छाया में आ चुका है उसमें अब एक ही प्रकार के रुपए का चलन होगा और हर बात में यह रुपया आजकल के फर्रुखाबादी रुपए के समान होगा। इस घोषणा के अनुसार जो विधान बना उसे भारत के मुद्रा सम्बन्धी इतिहास में बड़े ही गौरव का स्थान प्राप्त है। उसका सारांश यह था—

(१) १ली सितम्बर १८३५ से कम्पनी की टकसालों में एक ही प्रकार के रुपए की ढलाई होगी। इस रुपए का वजन १८० ग्रेन होगा जिसमें खालिस चांदी १६५ ग्रेन होगी। अठन्नियों और चवन्नियों में भी इसी हिसाब से चांदी रहेगी।

(२) कुछ खास तरह के सोने के सिक्के भी ढाले जायंगे पर कोई भी

आदमी कम्पनी के राज्य में सोने का सिक्का देने या लेने को बाध्य न होगा।

इस विधान की बदौलत १६५ ग्रेन खालिस चांदी वाला रुपया मुद्रा सिंहासन पर जा बैठा। देन-लेन के लिए सब लोग इसीका व्यवहार करने को बाध्य थे, इसलिए अपने क्षेत्र में धीरे-धीरे इसका एकछत्र राज्य सा स्थापित हो गया। भारतवर्ष में हर प्रकार के मूल्य का मापदण्ड चांदी बन गई।

पर साथ साथ एक हद तक सोने का चलन भी बना रहा। कम्पनी की टकसाल में सोने का जो प्रधान सिक्का ढलता उसका वजन भी १८० ग्रेन था जिसमें खालिस सोना १६५ ग्रेन था। इसका मूल्य था १५), और १८४१ का सरकारी फरमान था कि जब तक दूसरा हुक्म जारी नहीं किया जाता तब तक उनको और से ये सिक्के इसी दर से मंजूर किए जाय। पर यह व्यवस्था चिरस्थायी न हो सकी। कुछ ही वर्ष बाद आस्ट्रेलिया और कैलीफोर्निया में नई खानों के खुलने से सोने का उत्पादन बहुत बढ़ चला और चांदी की तुलना में वह सस्ता हो चला। नतीजा यह होने लगा कि लोग अपना लगान या कर रुपया से न चुका कर मोहरों से चुकाने लगे। बाजार में एक मोहर के १५) से कम मिलते, क्योंकि सोना सस्ता हो रहा था—पर सरकारी खजाने में वह अब भी उसी दर से ली जाती। इसलिए मोहरों की वहां भरमार होने लगी। और सरकार किसी को भी १५) में मोहर लेने को बाध्य नहीं कर सकती थी। सरकार चाहती तो चांदी की जगह उसी समय सोने को दे देती और सोने को ही मूल्य का मापदण्ड बना देती। पर ऐसा न करके सरकार ने १८४१ के आदेश को ही उठा लिया, और १ ली जनवरी १८५३ से मुद्रा के रूप में सोने का चलन बिलकुल बन्द हो गया।

सन सत्तावन के गदर के कारण भारत-सरकार की आर्थिक कठिनाइयां बेहद बढ़ गईं और स्थिति सुधारने के लिए मि० जेम्स विल्सन नामक विशेषज्ञ इंगलैण्ड से लाए गए। वह भारत-सरकार के प्रथम अर्थ सदस्य थे और इन्हीं के समय में करेन्सी नोट जारी किए गए। यह १८६१ की बात है। इससे पहले नोट जारी करने का अधिकार कुछ खास बैंकों को प्राप्त था, पर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के बाहर नोटों का

प्रचार नहीं के बराबर था। उस समय कोई भी आदमी नोट देने या लेन को कानूनन वाध्य न था। विल्सन न नोटों का प्रचार बढ़ान की दृष्टि स अपनी योजना भारत सचिव के सामन रखी। उस समय भारत सचिव सर चार्ल्स उड थ और उनका इस विषय में विल्सन से मतभेद था। विल्सन इस मत के अनुयायी थ कि नोटों की पुश्ती के लिए जो कोष या रिजव कायम किया जाय उसम एक हद तक सोना चादी रखकर वाकी हिस्सा सरकारी कागज के रूप म रखा जाय। सर चार्ल्स का सिद्धान्त था कि कम-स कम नोटों की पुश्ती एसे कागज स होनी चाहिए, और रिजव का वाकी सारा हिस्सा सोन या चान्दी का होना चाहिए।

अन्त में हुआ वही जो भारत सचिव को मजूर था। सन १८६१ में नोट सम्बन्धी जो विधान बना उसन करेंसी रिजव में सरकारी कागज की हद चार करोड़ पर बाध दी—अर्थात यहा तक तो नोटों की पुश्ती सरकारी कागज या सिक्यूरिटीज से की जा सकती थी पर यहां पहुच जान के बाद जो नोट निकाले जाते वे रिजव म सोना चान्दी रखकर ही। प्रारम्भ म रिजव म चादी-ही चादी रहती थी १८६५ में कुछ सोना भी जमा हुआ पर उसकी मात्रा कम होती गई और १८७५ में वह बिलकुल गायब हो गया। फिर १८९८ के बाद करन्सी रिजव में सोना इकट्ठा होन लगा। प्रारम्भ म दस बीस सौ और एक हजार के नोट जारी किए गए थ। पाच रुपए का नोट १८७१ में जारी किया गया, और दस हजार का नोट उसके भी बाद। १८६१ के विधान न सारे देश को कुछ हल्कों में बांट दिया जो सकल कहलाते थ—जसे कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और रगून। एक सकल का जारी किया हुआ नोट दूसरे सकल में कोई लेन का बाध्य न था, पर सरकारी देना किसी भी सकल के नोटों म अदा किया जा सकता था। नोटों की लोकप्रियता बढ़ाने के लिए और भी सुभीते कर दिए गए थ। पर नोटों का विशेष प्रचार वर्तमान शताब्दी में ही हुआ ह। समय समय पर नोट सम्बन्धी विधान म सशोधन होते रह ह। इस शताब्दी के पहले ग्यारह साल के भीतर, पांच से लेकर सौ रुपए तक के नोट अखिल भारतीय कर दिए गए—अर्थात् वे चाहे किसी भी सकल के हों लोग उन्हें सवत्र लेने को कानूनन बाध्य

हो गए। इससे नोटों का प्रचार और भी स्वच्छन्दता से होने लगा। नोटों की कागजी पूंजी की हद भी १८६१ और १९४३ के बीच कहां-से-कहीं जा पहुंची है।

जिस समय नोट-सम्बन्धी विधान पहलेपहल बना उस समय यहां रुपए की बड़ी टान थी। इसके कुछ खास कारण थे। अमरिका में उत्तर और दक्षिण के राज्यों के बीच जो भीषण संग्राम हुआ उसका एक नतीजा यह हुआ कि दक्षिण से रुई का निर्यात (एक्सपोर्ट) कुछ समय के लिए बन्द हो गया और यह व्यापार भारतवर्ष को मिल गया। यहां से निर्यात काफी होने लगा और देन का पावना चुकाने के लिए दूसरे देशों के लिए अधिकाधिक चांदी भेजना आवश्यक हो गया। पर भारतवर्ष इस समय बाहर कर्ज भी काफी ले रहा था। १८५५-५६ और १८६९-७० के बीच उसने प्राय ६६ करोड़ रुपए कर्ज लिए। इन दोनों कारणों से चांदी का आयात कहीं-से-कहीं बढ़ गया। १८५७-५८ और १८६२-६३ के बीच संसार भर में जितनी चांदी निकली उससे अधिक चांदी अकेले भारतवर्ष ने ली। फिर भी यहां रुपए की टान बनी ही रही। ऐसी अवस्था में लोगों का ध्यान सोने की ओर जाना स्वाभाविक था। १८६४ में यहां के वाणिज्य-व्यापार से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ सभाओं या चेम्बरों ने प्रस्ताव किया कि मूल्य का मान या स्टैंडर्ड सोना कर दिया जाय, और सोने के सिक्के चलन में लाए जायं। इस सम्बन्ध में कुछ अवतरण उस आवेदनपत्र से दिए जाते हैं जो बम्बई के चेम्बर की ओर से बड़े लाट के पास भेजा गया था—

'भारतवर्ष का व्यापार तेजी से बढ़ रहा है वह आर्थिक और औद्योगिक उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है पर चांदी इस समय उस व्यापार और उस उन्नति में सहायक न होकर बाधक हो रही है।

'जिस समय चांदी को अपनाया गया था उस समय उसका उत्पादन सोने से प्राय दूना था। इसलिए कहा जा सकता है कि उसे अपनाना बुद्धिमत्ता का काम था। पर वह बात अब नहीं रही। इधर चांदी के उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं हुई है। पर भारतवर्ष की मांग बेहद बढ़ गई है, इसलिए चांदी से काम चलाना असम्भव-सा हो गया है।

"संसार में हर साल प्राय एक करोड पौंड (स्टर्लिंग) की चांदी निकलती है। पर पिछले छ साल में एक भारतवर्ष ने ही हर साल एक करोड पन्द्रह लाख पौंड की चादी ली है। पिछले साल तो उसने १ करोड ४५ लाख पौंड की ली।

ऐसी अवस्था म चादी के मूल्य में बहुत बडी वृद्धि अनिवार्य है—जिसका अर्थ है भारतवर्ष जसे देश में द्रव्य की कमी और दामों का गिरना।

' उधर सोने का यह हाल है कि उसका उत्पादन बहुत बढ गया है और संसार म जितनी चादी निकलती है उससे कम-स-कम १५० प्रतिशत अधिक सोना निकलता है।

' भारतवर्ष के लिए और बाकी दुनिया के लिए चांदी काफी नही है, पर सब के लिए सोने की बहुतायत है इसलिए हम चाहिए कि हम चादी जसी कीमती और भारी चीज को छोडकर सोना जसी सस्ती और हलकी चीज का अपनाव।

इसस कई लाभ होगे—चादी का मूल्य अपनी मुनासिब जगह पर बना रहेगा और इस देश के वाणिज्य-व्यवसाय का विस्तार अप्रतिहत गति म होता रहेगा।

सोने का इस समय जो बहिष्कार है वह न तो सभ्योचित है न युक्तिसगत है न स्वाभाविक है। सोना इस समय भी यहा काफी आता है, पर वह सिक्के के रूप म नही चल सकता। सरकार को चाहिए कि वह शीघ्र-स शीघ्र चादी की गद्दी सोने को दे दे जिससे सोने के सिक्को का चलन हो जाय और इससे जो अनेक लाभ हो सकते है उनसे यह देश वचित न रहे।'

इस विषय पर काफी लिखा-पढी हुई पर कोई खास नतीजा न निकला। भारत-सचिव अन्त म यहा तक जाने का राजी हुए कि सावरन या गिन्नी १०) की दर से सरकारी खजानो में ले ली जायगी। बाद यह दर १०।) कर दी गई। १८६६ में इस विषय के अनुसधान के लिए एक कमीशन भी बठा। भारत-सरकार के तत्कालीन अर्थ-सदस्य सोने के सिक्के के पक्ष म थ। कमीशन ने भी अपनी राय उसके पक्ष में दी। पर यह सब

निष्फल रहा। १८७२ और १८७३ में अर्थ-सम्पन्न न फिर इस सम्बन्ध में कुछ प्रस्ताव भारत सरकार के सामने रखे। पर सरकार को प्रस्तावित सुधार स्वीकार न हुआ। १८७४ की ७ वीं मई को उसने अपना निर्णय इन शब्दों में प्रकाशित कर दिया कि—

"सोने के सिक्के को चलन में लाने की वाञ्छनीयता पर विचार कर सरकार इस नतीजे पर पहुंची है कि फिलहाल सोने को मूल्य का मान बनाने के लिए कोई भी कारवाई न की जाय।"

फलतः यहां चांदी के रुपए का ही बोलबाला बना रहा।

अब और देशों की सुनिए। फ्रांस में सोना और चांदी दोनों के ही सिक्के चलते थे। पर १८५० से पहले वहां प्रधानता चांदी की ही थी। कानूनन एक भाग सोना १५॥ भाग चांदी के बराबर था, पर १८०३ और १८५० के बीच बाजार दर के अनुसार चांदी इससे प्रायः सस्ती पड़ती थी, १५॥ के बजाय प्रायः १६ भाग चांदी एक भाग सोने के बराबर होती थी। जहां दो प्रकार के सिक्के चलते हैं वहां सस्ता या घटिया सिक्का तो चलन में रहता है, और महंगा या बढ़िया बाहर निकल जाता है। इसी को अर्थशास्त्र में ग्रेशम नियम' कहते हैं क्योंकि सबसे पहले इसपर प्रकाश डालनेवाले सर टॉमस ग्रेशम नामक अंग्रेज अर्थ सचिव थे। फ्रांस की ही बात लीजिए। सोने के सिक्के में कोई भुगतान करता तो वह सिर्फ १५॥ भाग चांदी पाने का हकदार होता पर उसी सिक्के को गलाकर वह बाजार में बेच देता तो उसे १६ भाग चांदी मिल जाती। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक था कि चलन से सोने के सिक्के निकल जाय और उसमें चांदी के सिक्कों की भरमार हो जाय। पर १८५० के बाद गंगा उलटी बहने लगी—अर्थात् चांदी महंगी और सोना सस्ता हो चला। जो अनुपात कानूनन १:१५॥ था वह अब कुछ समय के लिए प्रायः १:१५ हो चला। सिक्के के रूप में १५॥ भाग चांदी एक भाग सोने के बराबर होती, पर बाजार में अपने असली रूप में बिकने पर १५ भाग का ही एक भाग सोना हो जाता। इस परिवर्तित अवस्था में चलन से चांदी निकलने लगी और उसकी जगह सोना भरने लगा। फ्रांस में अब यह प्रश्न उठा कि दोनों डाल पकड़ने की—दो नावों पर पैर रखने

की क्या जरूरत ? कुछ लोग कहने लगे कि इंग्लैण्ड की तरह फ्रांस सिर्फ सोने को अपना ले, कुछ इसका विरोध करते हुए उसकी जगह चांदी की सिफारिश करने लगे। पर फ्रांस के कर्त्ताधर्त्ता न सोने का परित्याग करना चाहते थे न चांदी का। वे कुछ संशोधन के साथ परम्परा को कायम रखना चाहते थे। चलन से चांदी के सिक्के निकले जा रहे थे, इसको रोकने के लिए उन्होंने कुछ सिक्कों में चांदी की मात्रा कम कर दी। फिर १८६५ में फ्रांस, बेल्जियम, स्विटजरलैण्ड और इटली की एक सभा इस बात पर विचार करने के लिए हुई कि इन देशों की मुद्रा नीति क्या होनी चाहिए। इसके फलस्वरूप लैटिन मुद्रा संघ की स्थापना हुई और आपस में यह तय पाया कि संघ पन्द्रह साल तक कायम रहे और जो देश इसके सदस्य हों वे सब-के-सब अपनी मुद्रा नीति एक रखें। नीति यह ठहरी कि सोना और चांदी दोनों से ही मुद्रा का काम लिया जाय और गौण सिक्कों में चांदी की मात्रा कम कर दी जाय ताकि किसी के लिए उन्हें गलाकर बेचना लाभदायक न हो। सोने और चांदी के बीच का अनुपात वही १ : १५॥ रखा गया और इस बात की व्यवस्था की गई कि संघ के भीतर एक देश के सिक्के दूसरे देशों में भी चल सकें।

संघ को कुछ हद तक सफलता जरूर मिली पर यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी स्थापना से मुद्रा सम्बन्धी प्रश्न का कोई स्थायी हल हो सका। इसलिए जून १८६७ में फ्रांस के आग्रह से उस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इसमें बीस देश सम्मिलित हुए थे जिनमें केवल दो—इंग्लैण्ड और पोर्तुगाल—सोने के अद्वैतवादी उपासक थे। बाकी सब-के-सब या तो द्वैतवादी थे, जो सोना और चांदी दोनों से ही मुद्रा का काम लेते थे या जो केवल चांदी के उपासक थे।

सम्मेलन में हालैण्ड को छोड़कर सभी देशों का झुकाव सोने की ओर था और यह निश्चित हुआ कि धीरे-धीरे सब-के-सब चांदी को छोड़ सोने को अपना लें और सर्वत्र एक ही प्रकार के सिक्का का चलन हो। यहां तक तो इंग्लैण्ड सबके साथ रहा पर अब उसके प्रतिनिधि कहने लगे कि हमने जो कुछ कहा है उससे हमारी सरकार पाबन्द नहीं है और वह अपनी मुद्रा प्रणाली में तब तक कोई भी हेर-फेर न करेगी

जब तक उसे विश्वास न हो जाय कि यह सब प्रकार से वांछनीय है। उनका यह नया सुर सुनकर लोगों का उत्साह ठंडा पड़ गया और आगे जो कारवाई हुई उसमें उतनी एकता नजर नहीं आई। सम्मेलन की सिफारिशों का तत्काल कोई नतीजा नहीं निकला, पर इसमें सन्देह नहीं कि उसने सोने का जो गुण-गान किया उसका निकट भविष्य में कितने ही देशों की मुद्रा-नीति पर खासा असर पड़ा। १८७० में फ्रांस और प्रशिया (जर्मनी) के बीच संग्राम छिड़ा। इसमें फ्रांस की हार से उसका प्रभाव जाता रहा, और मुद्रा-सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय एकता के प्रश्न को आगे बढ़ानेवाला अब कोई दूसरा राष्ट्र न रह गया। मूल्य के मान के रूप में तो सोने को कई देशों ने ग्रहण कर लिया पर अन्तर्राष्ट्रीय सिक्के की बात जहां थी वहीं रही।

७

चांदी का परित्याग

लन्दन में चांदी स्टण्डर्ड औंस के हिसाब से बिकती है। यहां का स्टण्डर्ड है १००० भाग में ९२५ भाग खालिस चांदी। जिस समय का वत्तान्त यहां दिया जाता है उस समय इंग्लैण्ड की मुद्रा सोने की थी इसलिए कुल दाम सोने में ही समझे जाने चाहिए।

१८७३ से पहले कई साल तक लन्दन में चांदी का दाम ६० पेंस के करीब था। इधर चांदी में कुछ तेजी जरूर आ गई थी, मगर वह इतनी अधिक नहीं थी कि उसे विशेष महत्वपूर्ण कहा जा सके। लोगों को थोड़े समय के लिए कुछ चिन्ता जरूर हुई मगर वे शीघ्र ही निश्चिन्त हो गए और उनका यह विश्वास फिर दृढ़ हो चला कि चांदी और सोने के बीच का सम्बन्ध स्थिर या स्थायी बना रहेगा।

वास्तव में १८७३ चांदी के इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भिक वर्ष था। यह युग मुद्रा-जगत में भूचाल सा लाने वाला और कई गहन समस्याओं को उपस्थित करने वाला था। इस भूचाल से चांदी और सोने का पुराना सम्बन्ध छिन्नभिन्न-सा हो गया और इसका एक नतीजा यह हुआ कि कई देशों ने चांदी से घबराकर सोने का पल्ला पकड़ लिया।

चांदी अब अधोमुख हो चली—उसका दाम क्रमशः गिरने लगा। यों तो यह गिरना पहले ही शुरू हो गया था पर १८७३ में जब दाम ५७$\frac{7}{8}$ पेंस हो गया तब संसार का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ और इस सम्बन्ध में तरह-तरह के प्रश्न किए जाने लगे। चांदी बराबर गिरती ही गई। हर पांच साल का औसत लें तो १८७६ और १८९० के बीच उसका दाम यह रहा —

१८७६—८०	५२$\frac{3}{4}$ पेंस
१८८१—८५	५०$\frac{5}{8}$ पेंस

१८८६—९०	४४$\frac{१}{८}$ पेंस

दाम गिरते गिरते १८९३ में ३७$\frac{१}{१६}$ पेंस तक आ गया था।

चांदी के यों अधोमुख होने का कारण क्या था?

इस सम्बन्ध में प्रधान कारण यह बताया जाता है कि फ्रांस पर विजय पाने के बाद जर्मनी ने सोने को अपनाकर चांदी को बहिष्कृत कर दिया। यह सारी चांदी जब बाजार में बिकने लगी तब दाम का गिरना अनिवार्य हो गया।

जर्मनी को फ्रांस से जो हर्जाना मिला वह काफी बड़ी रकम थी। इसलिए चांदी की जगह सोने का चलन करना उसके लिए आसान हो गया। उधर उसकी महत्वाकांक्षा बड़ी चढ़ी थी ही। शायद उसका यह भी खयाल था कि सोना बड़प्पन का चिह्न है और कोई भी राष्ट्र तब तक बड़ों की श्रेणी में नहीं आ सकता जब तक वह इस विषय में इंग्लैंड की बराबरी नहीं करता। १८७१ में ही उसने इस ओर कदम बढ़ाया और १८७३ में उसकी ख्वाहिश पूरी हो गई। सोना सिंहासन पर आरूढ़ हो गया और चांदी जहां-तहां जाकर ठोकरें खाने लगी। १८७३ और १८७९ के बीच जर्मनी की ओर से जो चांदी संसार में बेची गई वह ११ करोड़ औंस से ऊपर थी।

पर कुछ विद्वानों का मत है कि अगर भारतवर्ष पर हुंडी करके भारत-सचिव करोड़ों रुपए हर साल विलायत न खींचते रहते तो जर्मनी की चांदी इस तरह बिकने पर भी बाजार इतना खराब न होता। इस मत के प्रतिपादकों में मि० मार्टिन उड थे जो कभी बम्बई के 'टाइम्स आव् इंडिया' के सम्पादक रह चुके थे। १८९३ में हर्शल कमेटी को उन्होंने इस विषय पर अपना लिखित वक्तव्य दिया था। उनका कहना था कि जब लन्दन की ओर से इस प्रकार की हुंडी की जाती है तब लन्दन के लिए यह जरूरी नहीं रह जाता कि वह चांदी भेजकर भुगतान करे—और उतने करोड़ रुपए की चांदी बिकने और भारतवर्ष जाने से रह जाती है। अगर भारतवर्ष पर इंग्लैंड का राजनैतिक प्रभुत्व न होता और इंग्लैंड इतने करोड़ रुपए इस ढंग से हर साल न लेता जाता तो चांदी की यह हालत न होती।

चाँदी का दाम गिरता गया और जैसा कि ऊपर कह चुके है वह दाम सात में था। यहा यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि चाँदी सस्ती हो गई या सोना महगा हो गया ? वास्तव में दोनो ही बातें हुइ। सोने का उत्पादन इधर कम हो चला था और चाँदी का उत्पादन बहुत बढ़ गया था। अमेरिका में पहले चाँदी कम—बहुत कम—निकलती थी पर, १८४९ के बाद वहा इसकी पैदावार इतनी बढी कि ससार आश्चर्य चकित हो गया और चाँदी की समस्या सयुक्त राज्यो की राजनीति का एक प्रधान अंग बन गई। १८५६ से १८६० तक वहा कुल चाँदी ३०६,४०० औंस निकली थी। दूसरे पाच वर्षों में निकली २८,१८० ९०० औंस। पर बाद की पैदावार को देखते हुए यह भी बहुत कम था। अकेले १८७४ में वहा २८,८६८,२०० औंस चाँदी निकली और १८९२ में ६३ ५०० ००० औंस।

अमेरिका म उस समय मुद्रा[1] सोने की थी और सोना महगा होने के कारण दाम गिरते जा रहे थ। इसलिए वहा यह आन्दोलन उठा कि मुद्रा सिंहासन पर चाँदी को भी बैठने का अवसर दिया जाय। इस आन्दोलन के समर्थक चाँदी के उत्पादक और कृषक थे। यह आन्दोलन तो सफल न हो सका पर इसके फलस्वरूप अमेरिका की सरकार बाजार में चाँदी की बहुत बडी खरीदार बन गई। यहा दो विधानो का उल्लेख आवश्यक है—एक तो ब्लाण्ड एलीसन एक्ट और दूसरा शर्मन एक्ट। पहला १८७८ पास हुआ और उसके अनुसार सरकार हर साल कम से कम २० ६२५,००० औंस और अधिक से अधिक ४१ २५० ००० औंस चाँदी खरीदने को बाध्य हुई। बारह साल तक सरकार चाँदी खरीदती गइ पर दाम का गिरना रुका नही। १८७८ म जो दाम ५२ ९/१६ पेंस था वह १८९० में ४३ ११/१६ पेंस हो गया। इस शर्मन विधान-द्वारा अमेरिका की सरकार प्रतिवर्ष कम स कम ५४ ०००,००० औंस खरीदने को बाध्य की गई।

---

[1] प्राय ऐसे प्रसग में मुद्रा का व्यवहार स्वयसिद्ध मुद्रा के अर्थ में किया गया है।

प्रतीक मुद्रा चाँदी या ताँबे के अलावा कागज की भी हो सकती थी और हर जगह थी भी।

चान्दी के बाजार में इससे थोड़े समय के लिए तेजी आई और दाम ५४$\frac{5}{8}$ पेंस हो गया पर उसे फिर अधोमुख होने देर न लगी और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है दाम गिरते गिरते १९०२ में २४$\frac{1}{16}$ पेंस पर आ गया।

रुपए में खालिस चान्दी थी १६५ ग्रेन और जब चान्दी का दाम ६० पेंस था तब एक रुपया प्रायः दो शिलिंग[1] के बराबर होता था। यह रुपए का विनिमय मूल्य था। ज्यों-ज्यों चान्दी गिरती गई वह विनिमय मूल्य या एक्सचेंज भी गिरता गया। उदाहरणार्थ —

	चान्दी का औसत दाम पेंस	औसत एक्सचेंज पेंस
१८७२—७३	६०$\frac{1}{4}$	२२ ३५१
१८७४—७५	५८$\frac{5}{16}$	२२ २१
१८७५—७६	५६$\frac{7}{8}$	२१ ६८५
१८७६—७७	५२$\frac{3}{4}$	२० ४८१

एक्सचेंज गिरने से समाज के एक अंग की हानि थी और दूसरे का लाभ था।

जब एक रुपए में दो शिलिंग अर्थात् २४ पेंस होते थे तब दस रुपए की समता एक पौंड से होती थी। उस समय किसी का एक पौंड विलायत में होता तो वह बैंक को देकर उसके बदले यहां १०) पा सकता था या किसी को एक पौंड वहां देना होता तो वह १०) यहां देकर बदले में एक पौंड वहां पा सकता था। जब एक्सचेंज गिरते गिरते यहां तक आ गया कि एक रुपया सोलह पेंस के बराबर होने लगा तब १५) की समता एक पौंड से होने लगी। अब अगर विलायत में एक पौंड जमा हो तो उसके बदले १५) यहां ले लीजिए और अगर विलायत में एक

[1] १२ पेंस = १ शिलिंग, और २० शिलिंग = १ पौंड स्टर्लिंग। रुपए का वजन था १८० ग्रेन ($\frac{3}{8}$ औंस), जिसमें खालिस चांदी थी १६५ ग्रेन। चांदी के दाम से रुपए का विनिमय-मूल्य निकालना साधारण अंकगणित का काम था।

पौंड चुकाना हो तो उसके लिए यहां १५) दाखिल कीजिए।

एक्सचेंज गिरने से इस देश के उत्पादकों का—विशेषकर कृषक समाज का—लाभ था। उनका जो माल विदेश में बिकता उसका दाम पौंड शिलिंग-पेंस में मिलता। फिर इनका रुपए से विनिमय करना पड़ता। अब अगर रुपए का विनिमय मूल्य गिर गया तो पौंड के उतने ही अधिक रुपए हुए जिससे यहां के उत्पादक या किसान विशेष लाभ में रहे।

हां जिन्हें रुपया विलायत भेजना था उनकी बात और थी। एक्सचेंज ज्यों-ज्यों गिरता उन्हें अधिकाधिक रुपए देकर पौंड लेने पड़ते। इस श्रेणी में थे ब्रिटिश कर्मचारी जिन्हें अपने परिवार के भरण पोषण के लिए विलायत पैसे भेजने पड़ते थे, ऐसे व्यापारी या व्यवसायी जिनका कारोबार यहां था पर जो अपने मुनाफे या अपनी पूंजी को यहां से उठाकर वहां ले जाना चाहते थे, और भारत सरकार, जिसे भारत सचिव की मांग पूरी करने के लिए हर साल कई करोड़ रुपए जुटाने पड़ते थे। विलायत से माल मंगानेवाले भी इसी श्रेणी में थे। मान लीजिए उन्होंने एक पौंड का माल मंगाया और हिसाब लगाया कि १३।-) में उन्हें बैंक से एक पौंड मिल जायगा इसी बीच एक्सचेंज गिर जाने से पौंड के पन्द्रह रुपए लगने लगे। लिहाजा उन्हें उस पौंड के लिए १॥≡) अधिक देना पड़ा।

भारतवर्ष के अधिकांश निवासी किसान हैं और इस विषय में देश के हानि लाभ का निर्णय उन्हींके हित की दृष्टि से होना उचित है। पर किसान न तो शिक्षित हैं और न संगठित। इसलिए जहां उनकी गहरी हानि होती है वहां भी उनसे कुछ करते धरते नहीं बनता, और ऐसी दशा में उनके हित की उपेक्षा होना बिलकुल स्वाभाविक है। उधर सरकार या अंगरेज कर्मचारी या व्यवसायी सुशिक्षित, सुसंगठित और सदा सावधान रहनेवाले हैं। उनकी जहां थोड़ी भी हानि होती है वे रोने चिल्लाने लगते हैं और ऐसा आन्दोलन खड़ा कर देते हैं कि उनके हित की उपेक्षा असम्भव-सी हो जाती है। रुपए के एक्सचेंज के इतिहास में बार-बार ऐसा ही हुआ है।

जब चान्दी की दर के साथ रुपए की विनिमय-दर गिरने लगी, तो विलायत पैसे भेजनेवालों को यह स्थिति बहुत अखरने लगी, और उन्होंने इसके खिलाफ हो-हल्ला मचाना शुरू कर दिया। किसान तो बेजबान थे, और उनकी ओर से बोलनेवाले दूसरे लोग भी आज की अपेक्षा बहुत कम थे।

१८७५ में पार्लमेण्ट की ओर से एक कमेटी इस विषय के अनुसधान के लिए बैठी कि चादी के दाम गिरने के क्या कारण हैं, और भारत तथा इंगलैण्ड के बीच के एक्सचेंज पर इसका क्या असर पड़ा है। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में विषय-विवेचना तो की पर भारतवर्ष की ओर से किसी कारवाई की सिफारिश नहीं की।

उसी साल अंग्रेज व्यापारियों की ओर से भारत-सरकार के पास आवेदन पत्र भेजे गए कि कुछ काल के लिए चान्दी की टकसाल सर्वसाधारण के लिए बन्द कर दी जाय। पर सरकार को यह मंजूर न हुआ।

तीन साल बाद स्वयं सरकार ने यह प्रस्ताव किया कि भारतवर्ष चादी की जगह सोने को अपना ले और सर्वसाधारण को अपनी चादी टकसाल में ले जाकर उसके सिक्के ढलवा लेने का जो अधिकार प्राप्त है वह उससे ले लिया जाय— अर्थात् मुद्रा सोने की हो और रुपया उसके प्रतीक का काम करे। 'दोनों के बीच की दर समय-समय पर सरकार निश्चित करती रहे और जब उसमें यथेष्ट स्थिरता आ जाय तब यह दर बराबर के लिए दो शिलिंग कर दी जाय।' उस समय बाजार में एक्सचेंज की दर १ शिलिंग ८ पेंस थी। दो शिलिंगवाले दिन इस समुदाय को अभी तक भूले नहीं थे।

भारत-सरकार के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए लन्दन में एक कमेटी बैठी, जिसके सदस्यों में भारत-सचिव की कौंसिल और ब्रिटिश-सरकार दोनों के ही प्रतिनिधि थे। इस कमेटी ने एकमत हो अपनी राय उस प्रस्ताव के विरुद्ध दी। ब्रिटिश-सरकार के अर्थ-विभाग की ओर से इस प्रस्ताव पर जो टिप्पणी की गई थी (नवम्बर २४,१८७९) उसका कुछ अंश उद्धृत करने लायक है —

'भारत-सरकार का प्रस्ताव है कि चादी के रुपए को इस समय जो

स्थान प्राप्त है वह उससे छीन लिया जाय और उसे प्रतीक-मुद्रा बनाकर उसके और सोने की मुद्रा के बीच एक स्थायी सम्बन्ध सरकारी आदेश से स्थापित कर दिया जाय।

'पर यह व्यवस्था स्वाभाविक न होकर कृत्रिम होगी और इसकी सफलता के लिए सरकारी हस्तक्षेप अनिवार्य होगा। इस प्रकार के हस्तक्षेप से बहुत कुछ बुराई होने का डर है।

'हो सकता है कि इस प्रकार रुपए की दर बाँध देने से भारत सरकार, अंग्रेज कर्मचारी और अंग्रेज व्यवसायी अपनी अपनी चिन्ता से मुक्त हो जायँ और फायदे में रहें, पर आखिर इसका दाम चुकाना पड़ेगा भारत के किसानों को जिनके कर्ज का बोझ (गल्ले इत्यादि का दाम गिर जाने के कारण) और भी भारी हो जायगा और जिन्हें लगान या कर चुकाने के लिए (उपज के रूप में) आज जितना देना पड़ता है उससे कहीं अधिक देना पड़ेगा।

भारत सचिव ने दिसम्बर १८७९ में भारत सरकार को लिखा कि इस परिवर्तन की मंजूरी नहीं दी जा सकती।

लटिन मुद्रा संघ के सदस्य-देशों को अपनी हितरक्षा के लिए अब दूसरे ही प्रकार की कारवाई करनी पड़ी। चलन से सोना निकला जा रहा था, और उसकी जगह सस्ती चाँदी भरती जा रही थी। चूँकि उनके यहाँ चलन में चाँदी के सिक्कों का अनुपात बहुत बढ़ा हुआ था वे अपनी मुद्रा प्रणाली से चाँदी का पूर्ण बहिष्कार करने में असमर्थ थे। पर आगे के लिए उन्होंने चाँदी की टकसाल का दरवाजा सर्वसाधारण के लिए बन्द कर दिया। १८८० तक यूरोप में कोई भी देश ऐसा न रह गया था जहाँ सर्वसाधारण को यह अधिकार हो कि चाँदी टकसाल में ले जाकर उसके सिक्के ढलवा सके। मूल्य के मान के सिंहासन पर सिर्फ चीन और भारतवर्ष में चाँदी रह गई थी।

कमेटी-कान्फ्रेंस कमीशन, इनका सिलसिला बना ही रहा। दो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन फिर पेरिस में हुए, और दोनों का उद्देश्य यही था कि चाँदी में स्थिरता लाने के लिए सब देशों की ओर से कुछ किया जाय। वे एकमत न हो सके, इस कारण परिस्थिति में कोई अन्तर न पड़ा।

१८७८-७९ से १८८४-८५ तक चांदी ५१ पेंस के आसपास बनी रही, और फलत एक्सचेंज भी स्थिर रहा —

	चांदी का औसत दाम	औसत एक्सचेंज
	पेंस	पेंस
१८७८—७९	५२ ५/१६	१९ ७६१
१८७९—८०	५१ ३/४	१९ ९६१
१८८०—८१	५१ ३/४	१९ ९५६
१८८१—८२	५१ ११/१६	१९ ८९५
१८८२—८३	५१ ५/८	१९ ५२५
१८८३—८४	५० ९/१६	१९ ५३६
१८८४—८५	५० ५/८	१९ ३०८

पर १८८६ में चांदी फिर नीचे गिरी और भारत-सरकार ने फिर अपनी कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए एक्सचेंज बायम के उद्देश्य से एक स्कीम ऊपरवालों के सामने रखी। पर इस बार भी उसका प्रयत्न निष्फल रहा, ऊपरवालों ने उसके प्रस्ताव को नामंजूर कर दिया। उन्होंने भारत-सरकार के प्रस्ताव की आलोचना करते हुए लिखा

'इसमें सन्देह नहीं कि अंग्रेज कर्मचारी-जन लोगों को इससे कुछ लाभ पहुंचेगा, पर साथ ही इससे भारतीय किसान या करदाता की बड़ी हानि होगी। चांदी का दाम गिरने से इधर भारतवर्ष के वाणिज्य-व्यवसाय की बड़ी उन्नति हुई है और ऐसा जान पड़ता है कि जनता को हानि की अपेक्षा लाभ अधिक हुआ है। ऐसी हालत में भारत सरकार का हस्तक्षेप करके रुपए को कृत्रिम मूल्य देना बहुत आपत्तिजनक है। हम इस प्रश्न पर केवल सरकार या उनके अंग्रेज कर्मचारियों के हित या सुविधा की दृष्टि से विचार नहीं कर सकते, हमें सब से अधिक तो यह देखना और विचारना होगा कि चांदी के गिरने का भारतीय जनता पर— उसकी व्यापारिक और औद्योगिक अवस्था पर—क्या असर पड़ा है।

१८८९ में एक शाही कमीशन, जिसके अध्यक्ष लार्ड हर्शल थे चांदी और सोने के सम्बन्ध की आलोचना के लिए बैठा। इस कमीशन के १२ सदस्यों में एक सर डेविड बार्बर थे, जो भारत-सरकार के प्रतिनिधि कहे

जा सकते थे। पर यह कमीशन भी एकमत न हो सका। छ सदस्य। द्वित मुद्रा प्रणाली के पक्ष में राय दी पर बाकी छ की राय यह ठहरी कि अद्वित (सोना या चांदी) की जगह द्वित (सोना और चांदी दोनों) को ग्रहण करना अंधकार में कूदने के समान खतरनाक होगा। इस मत भेद के कारण कुछ भी न हो सका। भारत सरकार ने आशा की थी कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौते से द्वित प्रणाली की स्थापना और चांदी के प्रश्न का हल होजायगा पर वह आशा निराशा में परिणत हो गई।

उधर चांदी नीचे गिरती ही गई और उसके साथ-साथ हमारी हुण्डी की दर भी —

	चांदी का औसत दाम	औसत एक्सचेंज
	पेंस	पेंस
१८८५—८६	४८$\frac{५}{८}$	१९ २५४
१८८६—८७	४५$\frac{३}{८}$	१७ ४४१
१८८७—८८	४४$\frac{५}{८}$	१६ ८९८
१८८८—८९	४२$\frac{७}{८}$	१६ ३७९
१८८९—९०	४२$\frac{११}{१६}$	१६ ५६६
१८९०—९१	४८$\frac{११}{१६}$	१८ ०८९
१८९१—९२	४५$\frac{१}{१६}$	१६ ७३३
१८९२—९३	३६$\frac{३}{४}$	१४ ९८५
१८९३—९४	३५$\frac{५}{१६}$	१४ ५४७

१८९१ में सुनने में आया कि अमेरिका चांदी की समस्या पर विचार करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन कर रहा है। भारतवर्ष में किसी को इस सम्मेलन से विशेष आशा नहीं थी। यहां सरकार और अग्रज व्यवसायी यह सोचने विचारने लगे कि अगर यह सम्मेलन भी पहले सम्मेलनों की तरह असफल रहा तो हमारा कर्तव्य क्या होगा। भारत सरकार ने इस सम्बन्ध में भारत-सचिव को लिखा (जून २१ १८९२) कि —

'अगर यह स्पष्ट हो गया कि इस सम्मेलन से कोई सन्तोषजनक व्यवस्था होने वाली नहीं है, और यह भी स्पष्ट हो गया कि भारतवर्ष

और अमेरिका के बीच कोई समझौता नहीं हो सकता तो हमारा प्रस्ताव है कि सर्व साधारण के लिए चांदी की टकसाल का दरवाजा बन्द कर दिया जाय और चांदी की जगह सोने का सिक्का जारी करने का प्रयत्न की जाय।'

सोने और चांदी के बीच का सम्बन्ध क्या हो इस विषय में अपनी राय जाहिर करते हुए भारत-सरकार ने लिखा कि एक्सचेंज की दर इसी दर के आसपास रखना चाहते हैं जो नई व्यवस्था के समय बाजार में हो।

इस पत्र को लिखते हुए भारत सरकार ने भारत-सचिव को विश्वास दिलाया कि लोकमत चांदी के परित्याग और सोने के अंगीकार के सर्वथा अनुकूल है और व्यापारिवर्ग से हमें इस काम में हर प्रकार की उचित सहायता मिल सकती है।

वास्तव में यह अयुक्ति और असत्य था। भारतवासियों के जो सच्चे प्रतिनिधि हो सकते थे वे चांदी के परित्याग के घोर विरोधी थे क्योंकि वे जानते थे कि सोने की आड़ में सरकार मनमानी एक्सचेंज को ऊंचा करना चाहती है। ब्रिटिश व्यवसायी भी दो दलों में विभक्त थे। एक दल सरकार के साथ था और उसके नेता थे मकीनन मकेंजी कम्पनी के मि० जेम्स मके जो बाद में लार्ड इंचकेप के नाम से मशहूर हुए। इसकी ओर से 'इण्डियन करेन्सी एसोसियेशन' नाम से एक संस्था खड़ी की गई और पार्लमेण्ट के पास भेजने के लिए एक आवेदनपत्र पर यनकेनप्रकारेण लोगों के दस्तखत कराए जाने लगे। दूसरा दल चांदी के परित्याग के प्रस्ताव का विरोधी था और इसमें राली बन्धु, ग्राहम, ग्रीव्ज हैंडमन, एण्डरूयूल आदि कलकत्ते की प्रतिष्ठित फर्म सम्मिलित थे। इन लोगों की ओर से ६ फरवरी १८९३ को गवर्नर-जनरल के पास एक आवेदन पत्र भेजा गया। उसमें कहा गया था —

'हम लोग बंगाल के व्यवसाय के बहुत बड़े अंश के प्रतिनिधि हैं और प्रान्त भर के उत्पादक और दूसरे व्यवसायी इस विषय में हमारे साथ हैं।

'हम लोगों का मत है कि करेन्सी एसोसियेशन दल का विनिमय

मूल्य ऊचा कराने और ठहराने के लिए जो प्रस्ताव कर रहा है वह हानिकारक है जिससे सरकार की अपनी साख और इस देश के वाणिज्य व्यवसाय को खतरा है।

हम लोग इस बात के पक्षपाती नहीं कि रुपए का मूल्य डावाडोल बना रहे या वह बराबर नीचे गिरता जाय पर हमारे विचार में इससे भी कहीं अधिक आपत्तिजनक है उसको पौंड स्टर्लिंग-पस में कृत्रिम मूल्य प्रदान करना। हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि करेन्सी एसोसियेशन का बताया हुआ इलाज किया गया तो बीमारी और भी बढ़ जायगी और तरह तरह के उपद्रव होने लगेंगे।

'हम लोग अनुभवी व्यापारी होने का दावा कर सकते हैं और इस हैसियत से हम करेन्सी एसोसियेशन के अध्यक्ष के इस कथन का खण्डन करना चाहते हैं कि चांदी के गिरने से इस देश के व्यापार को बड़ा धक्का लगा है और यहां ऐसी मन्दी आ गई है जैसी पहले कभी न थी। वास्तव में जो मन्दी है उसके कारण और ही हैं।

'हम जानते हैं कि सरकार की आर्थिक स्थिति चांदी या एक्सचेंज के गिरने से चिन्ताजनक हो गई है—और उसके जिन कर्मचारियों को इसके नुकसान पहुंचा है उनसे हमारी पूरी सहानुभूति भी है। पर स्थिति को सुधारने के लिए न तो यह आवश्यक है न वाञ्छनीय, कि हम अपनी मुद्रा प्रणाली को ही—जो हमारे वाणिज्य-व्यवसाय का आधार है और जिससे इस देश की धन सम्पदा इतनी बढ़ी है—बिलकुल बदल दें।"

ऊपर जिन फर्मों के नाम लिखे गए हैं उनके अलावा इस आवेदनपत्र पर विल्सन कम्पनी हागकाग शघाई बैंकिंग कार्पोरेशन, ग्याल मार्शल, ईस्टइंडियन स्टील बामर लॉरी जेम्स इंग्लिस, डेविड ससून ऐंड कम्पनी आदि के भी हस्ताक्षर थे।

भारतीय संस्थाओं की ओर से भी टकसाल बन्द करने के प्रस्ताव का विरोध किया गया। कांग्रेस के मत का उल्लेख हम पीछे करेंगे यहां इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि कलकत्ते की इण्डियन एसोसियेशन और पश्चिम भारत की प्रमुख संस्था इण्डस्ट्रियल एसोसियेशन ने भी उस प्रस्ताव का घोर विरोध किया। इण्डियन एसोसियेशन ने अपने

वक्तव्य में ठीक ही कहा —

भारत-सरकार की जो आर्थिक स्थिति हो रही है उसे सुधारने का सही तरीका है फौजी खर्च में कमी करना, जो रकम इंगलैण्ड में खर्च की जाती है उसको घटाना, अंग्रेज कर्मचारियों की संख्या कम करके उनकी जगह भारतवासियों की भरती करना और—आवश्यक हो तो—ऐसी विदेशी वस्तुओं पर हलका-सा कर लगा देना जो यहाँ न तो जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आती हैं, न इस देश के उद्योग धंधों की तरक्की के लिए।

वास्तव में सरकारी कर्मचारी करन्सी एसोसियेशन से लिखवाने का काम ले रहे थे। पर वे इतने से ही सन्तुष्ट न हुए। उनकी ओर से और भी जितने उपायों से आन्दोलन किया जा सकता था किया गया। २१ जनवरी १८९३ को एक डेपुटेशन बड़े लाट (लार्ड लैन्सडाउन) से भी मिला। उनके साथ सरकार की हमदर्दी जाहिर करते हुए बड़े लाट ने यह सूचित किया कि यद्यपि सारा विषय उस समय विचाराधीन था तथापि भारत सचिव की आज्ञानुसार यह निश्चित हो चुका था कि फिलहाल जो कर्मचारी छुट्टी लेकर विलायत जायँगे उनको वेतन और भत्ता १६½ पेंस के रेट से मिलेगा। बाजार-रेट उस समय १४ ३/१६ पेंस था।

सरकार की हमदर्दी और भी आगे गई। टकसाल बन्द हो जाने के बाद उसने गोरे और यूरेशियन कर्मचारियों को एक खास तरह का भत्ता देना मंजूर किया जो एक्सचेंज गिरने के कारण होनेवाली हानि की पूर्ति के लिए था। यह भत्ता कई साल तक मिलता रहा। बाजार में वास्तविक एक्सचेंज रेट और १८ पेंस के बीच जो फर्क होता वह उन्हें सरकार की ओर से मिल जाता जिससे वे साल में १००० पौंड तक विलायत भेज सकें। जिन्हें इतना न भेजना पड़ता वे भी भत्ता पाने के हकदार होते। हर साल इसमें सरकार का एक करोड़ रुपए से अधिक खर्च होता रहा। कांग्रेस बराबर इस भत्ते का विरोध करती रही।

१ सितम्बर १८९२ को भारत सरकार के प्रस्तावों पर विचार करने के लिए एक करेन्सी-कमेटी की नियुक्ति हुई। इसके अध्यक्ष थे लॉर्ड हर्शेल (जो उस समय लार्ड चान्सलर थे) और इसके बाकी सदस्यों में

मि० कटनी सर आर्थर गाडले, जनरल स्ट्राची आदि थे।

इसी बीच वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी बेल्जियम की राजधानी में बैठा। पर जिस राह और सम्मेलन जा चुके थे उसी राह यह सम्मेलन भी गया। इसकी असफलता का एक नतीजा यह हुआ कि चांदी की टकसाल बन्द कराने वालों के आन्दोलन में और भी बल आ गया।

इधर हर्शल कमेटी की बैठकें लन्दन में होती रहीं और गवाहियां गुजरती रहीं। उन गवाहों में एक मात्र भारतवासी प्रातःस्मरणीय दादा भाई नौरोजी थे, और उन्होंने भारत सरकार के प्रस्ताव का विरोध ही किया। पर उनका साथ देनेवाले कई अंगरेज गवाह भी थे जिनमें राली ब्रदर्स के मि० राली मि० राबर्ट ग्रिफिन (जो वर्षों बोर्ड आव ट्रेड में बड़े कर्मचारी रह चुके थे) यूनियन बैंक आव स्काटलैण्ड के जनरल मैनेजर मि० चार्ल्स गार्डनर मि० विलियम फौलर सर फ्रांक फार्म्स एडम आदि मुख्य थे।

कमेटी की रिपोर्ट मई १८६३ के अन्त में तैयार हुई। उसका निचोड़ यही था कि भारतवर्ष चांदी का परित्याग कर दे—सर्वसाधारण के लिए टकसाल का दरवाजा बन्द कर दिया जाय और हुण्डी की दर फिलहाल १६ पेंस कर दी जाय।

गरज यह कि भारत सरकार का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। कमेटी ने उसमें हेरफेर किया तो इतना ही कि हुंडी की दर १८ पेंस न करके (यह दर सरकार की ओर से सुझाई गई थी) उसने फिलहाल १६ पेंस कर देने की सिफारिश की। भारत सरकार ने कहा था और कमेटी ने भी इसको दोहराया कि चांदी का परित्याग सोने के ग्रहण के उद्देश से ही किया जा रहा था।

२० जून को भारत सचिव ने तार-द्वारा भारत सरकार को टकसाल बन्द करने और नई व्यवस्था जारी करने के लिए मुनासिब कारवाई करने की इजाजत दी।

२६ जून को बड़े लाट की विधान सभा में इस विषय से सम्बन्ध रखने वाला कानून पास हुआ और उसी दम चांदी सिंहासनच्युत कर दी गई। सर्वसाधारण के लिए अब टकसाल का दरवाजा खुला न रहा—वहां चांदी

कि सिक्के ढलवाने का अधिकार अब केवल सरकार को रह गया। साथ ही साथ इस बात की भी व्यवस्था की गई कि टकसाल में जो कोई १६ पेंस अथवा ७ /३२८८ ग्रेन खालिस सोना दाखिल करे उसे बदले में एक रुपया मिल जाय।

हिल्टन कमेटी ने जिस व्यवस्था की सिफारिश की थी और जो अब कानूनन जारी की गई वह थोड़े समय के लिए थी। विचार यह था कि इसका अनुभव हो जाने पर स्थायी व्यवस्था की जाय। एक्सचेंज अथवा हुण्डी की दर के सम्बन्ध में यह बात खास तौर से नोट कर लेनी चाहिए। हिल्टन कमेटी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि अगर परिस्थिति अनुकूल हो तो यह दर बदली जा सकती है। सरकार की ओर से विधान-सभा में कहा गया कि चाँदी के रुपए और सोने के बीच जो सम्बन्ध स्थापित किया जा रहा है उसको अन्तिम निर्णय नहीं समझना चाहिए।

कांग्रेस ने प्रस्ताव-द्वारा इस बात पर जोर दिया था कि हिल्टन कमेटी की जो सिफारिशें हों वे सर्वसाधारण के सामने रखी जायँ और किसी भी प्रकार की कारवाई से पहले उन पर पूरी तरह से विचार हो ले। पर हमारी सरकार उतने समय के लिए भी ठहरने वाली न थी।

अब पक्ष और विपक्ष का सवाल सुनिए —

बार-बार सरकार की ओर से यह रोना रोया जाता था कि चाँदी गिरने से हुण्डी की दर गिरती है और इसका नतीजा यह होता है कि जो रकम हमें विलायत भेजनी होती है उसके लिए यहाँ अधिकाधिक रुपए जुटाने पड़ते हैं, हमारा आर्थिक संकट बराबर बना ही रहता है और हम कभी यह निश्चयपूर्वक नहीं जान सकते कि हमारी परिस्थिति कब क्या रहेगी।

इसका जवाब यह था —

वास्तव में हमें इंगलैण्ड को जो कुछ देना पड़ता था उससे हमारा रक्त-शोषण-सा होता था और अगर हम पराधीन न होते तो लेन-देन की यह नौबत ही न आती। उस जमाने में यह सालाना रकम डेढ़ करोड़ पौण्ड से ज्यादा थी और अगर एक्सचेंज की दर १६ पेंस पकड़ी जाय, तो उसके २२॥ करोड़ रुपए से अधिक होते थे। इससे जितनी ही ऐसी रकम

शामिल थी जो हम पर सिर्फ इसलिए लाद दी गई थी कि हम बवस थ, और इंग्लण्ड मनमानी जोर जबर्दस्ती कर सकता था। अफगानिस्तान की तो बात ही क्या अबीसीनिया की लडाई का खच भी हमसे वसूल किया गया। स्थालीपुलाक न्याय इससे ही समझ लीजिए कि क्या अवस्था थी। सबसे पहले देखन की बात तो यह थी कि भारतवष को जो कुछ देना पडता था उसमें न्यायत कहा तक कमी की जा सकती थी। फौजी खच का एक बडा हिस्सा इग्लण्ड को देना चाहिए था क्योंकि जो फौज यहां थी वह कवल भारतवष की रक्षा के लिए नही बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य मात्र की रक्षा और भलाई के लिए। मि० ग्रिफिन के मतानुसार, भारत सरकार का आर्थिक संकट टालन या दूर करन के लिए मुद्रा प्रणाली म एस परिवतन की कोई आवश्यकता नही थी --आवश्यकता थी तो खच घटान की भारतवष का बोझ हलका करन की। 'न्याय का तकाजा यह था कि भारत के खच में करीब छ करोड की कमी कर दी जाय और उसके बोझ का यह हिस्सा इग्लण्ड अपन ऊपर ले ले'।

एक्सचेंज गिरन से सरकार की कठिनाई जरूर बढ़ जाती मगर उस हद तक नही जो सरकारी बयानो में दी जाती। इस विषय में यह भी याद रखन की बात ह कि चादी सस्ती होन और एक्सचेंज गिरन से हमार एक्सपोट (निर्यात) व्यापार और उद्योग धधो की बडी उन्नति हुई और इससे सरकार की आमदनी भी बढी। १८७३ ७४ में भारत-सरकार की आय चालीस करोड के लगभग थी। पर १८९१ ९२ में यह ५० करोड से ऊपर पहुच गई थी। जो रकम विलायत भजनी पडती उसमें थोडी सी वद्धि हो गई तो उसके लिए चादी काफी बदनाम की गई। पर उसी चादी न दूसरी ओर करोडो की आमदनी कर दी तो उस इसका कुछ भी यश नही मिला! श्री रमेशचन्द्र दत्त न अपन प्रसिद्ध ग्रथ Economic History of India (भारतवर्ष का आर्थिक इतिहास) में लिखा ह कि चादी और एक्सचेंज गिरन से जब चावल और गहूं में तजी आती तब सेटलमण्ट (बन्दोबस्त) अफसर जमीन का लगान या माल बढा देते और जब वाणिज्य व्यापार बढन से व्यवसायियो की आय में वद्धि होती तब इनकम टक्स अफसर टक्स बढ़ाकर अपन कतव्य का पालन

करते—चाँदी के गिरने से सरकार को न कोई खास कठिनाई थी न नुकसान। १८११-१२ में समाप्त होनेवाले दस वर्षों में व्यय से आय प्राय ५ करोड़ अधिक रही। यह इस बात का प्रमाण है कि भारत-सरकार का आर्थिक संकट जितना काल्पनिक था उतना वास्तविक नहीं।

हिसाब किताब में जो हानि दिखाई जाती वह इस आधार पर कि अगर इतना रुपया २ शिलिंग या २४ पेंस की दर से विलायत भेजा जा सकता तो सरकार को यह इतना कम लगाना पड़ता। उदाहरण के लिए १८९२-९३ में एक्सचेंज के कारण होनेवाली हानि प्राय दस करोड़ दिखाई गई थी—अर्थात अगर दो शिलिंग की दर कायम होती तो उस साल इतने कम रुपए से ही भारत-सचिव की हुण्डियों का भुगतान हो जाता। पर इस सिलसिले में क्या यह याद रखने की बात नहीं थी कि दो शिलिंगवाले जमाने में भारत-सचिव की माँग आज से कहीं कम थी और सरकार के दूसरे खर्च भी इस बड़े पैमाने पर न थे? भारत-सरकार की आर्थिक कठिनाइयों या संकट में कोई वास्तविकता थी भी तो उसके लिए चाँदी या एक्सचेंज नहीं बल्कि और ही बातें जिम्मेवार थीं।

सरकार को हर हालत में अपने व्यय को आय के भीतर रखना चाहिए था। तेते पाँव पसारिए जेती लाँबी सौर। पर इस कर्तव्य का उससे पालन न हुआ और वह लापरवाही के साथ हर तरफ पैर पसारती ही गई। सरहद्दी लड़ाइयों में पैसा पानी की तरह बहाया गया, फौजी ताकत बढ़ाने में अंधाधुंध खर्च किया गया। पर जब आर्थिक कठिनाई उपस्थित हुई तब इसके लिए दोषी ठहराई गई चाँदी और रुपए का गिरता हुआ विनिमय मूल्य।

घड़ी भर के लिए यह मान भी लिया जाय कि बिना कर-वृद्धि किए सरकार की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकती थी तो भी कहना पड़ेगा कि सरकार को जो करना चाहिए था उस करने को वह तैयार न थी। विदेशी वस्तुओं पर उस समय जो कर या ड्यूटी थी वह नहीं के बराबर थी। १८७५ में यह ड्यूटी ५ प्रतिशत कर दी गई थी। कपड़े के लिए खास रियायत थी। १८८२ में नमक और शराब को छोड़ बाकी चीजों पर से ड्यूटी हटा ली गई और इसके बाद कई साल तक विदेशी

वस्तुएं यहां बिना किसी प्रकार का कर दिए आती रहीं। इनमें प्रधानतः कपड़ा ही था। हर्शल कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि आय बढ़ाने के लिए अगर विदेशी वस्तुओं पर फिर से ड्यूटी लगा दी जाय तो इसका बहुत कम विरोध होगा—कहा तो यह जाता है कि यह काम लोकप्रिय होगा। पर कठिनाई यह है कि अभी हाल में ही कपड़े पर से ड्यूटी हटा ली गई है और अगर वह फिर से लगा दी गई तो इंग्लैण्ड में इसका घोर विरोध होगा। इंग्लैण्ड का विरोध स्वार्थमूलक था। उसका उद्देश्य था मैन्चेस्टर की मिलों को अधिक-से अधिक सम्पन्न रखना। बार बार उनकी भलाई की वेदी पर भारत के हित का बलिदान किया गया। अगर भारत स्वतन्त्र होता, और चांदी के गिरने से सचमुच उसे कोई कठिनाई होती तो वह इम्पोर्ट ड्यूटी बढ़ाकर बड़ी ही आसानी से उस समस्या को हल कर सकता था।

यह हुई सरकार के संकट की बात। अब अंग्रेज कर्मचारियों की कठिनाइयों को लीजिए।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इन्हें संसार में ऊंचे से ऊंचे वेतन और ऊंचे से ऊंचे भत्ते मिलते थे। 'कैपिटल' नामक पत्र ने अपने १२ जुलाई १८९२ के अंक में बहुत ठीक लिखा था कि 'अगर एक शाही कमीशन यहां आकर जांच करे तो यह बात की बात में स्पष्ट हो जायगा कि जो अफसर या कर्मचारी सबसे ज्यादा शोर जरूर मचा रहे हैं वे हिन्दुस्तान के सबसे कम हकदार हैं। यहां तो जरूरत इस बात की है कि वेतन और भत्ते नए सिर से मुकर्रर किए जायं क्योंकि कुछ तो बहुत ही कम पाते हैं और कुछ बहुत ही ज्यादा। संसार में और कोई देश नहीं जहां वेतन इतने ऊंचे हों और चीजें इतनी सस्ती।' यह ध्यान में रखने की बात है कि यूरोप में १८७३ और १८९३ के बाद सोना महंगा होने के कारण दाम काफी नीचे गिर गए थे। स्वेज की नहर खुलने से यूरोप का रास्ता पहले से छोटा हो गया था और आने जाने में खर्च कम पड़ता था। इधर भारतवर्ष में रेलों का जाल फैलता जा रहा था और व्यापारिक प्रतियोगिता बढ़ती जा रही थी। ये सारे कारण विदेशी वस्तुओं के दामों को

था, पर फिर भी बाहर से आनेवाली चीजें १८९३ में १८७३ की अपेक्षा सस्ती थीं। लन्दन के 'स्टेटिस्ट' नामक पत्र ने इन कर्मचारियों की माँग पर टीका करते हुए लिखा था—

'इनका कहना है कि वेतन का जो हिस्सा हमें यूरोप से आनेवाली चीजों पर खर्च करना पड़ता है उसमें सैकड़े ३८ की वृद्धि हुई है। शायद इनका खयाल है कि यूरोप में रहनेवाले भारत की बातों से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। यह खयाल न होता तो ये ऐसी बात कहने की कल्पना न करते। असलियत तो यह है कि यह वृद्धि नहीं के बराबर हुई है। फिर इनका कहना है कि वेतन का जो हिस्सा हमें विलायत भेजना पड़ता है उसमें भी नुकसान उठाना पड़ता है। पर अगर नुकसान हो भी तो भारत सरकार का इसमें क्या दोष? वह तो कहेगी और बहुत ठीक कहेगी कि हमने तुम लोगों को जो कुछ देने का वादा किया था वह दे दिया। उसके जितने कर्मचारी हैं उनके वेतन वह रुपयों में चुका देती है। चाँदी के गिरने से रुपए का एक्सचेंज-दर गिरता है तो वह क्या करे? उसके लिए न वह जिम्मेदार है न वह उसको रोक सकती है।'

चाँदी के विरुद्ध आन्दोलन करनेवालों का कहना था कि मौजूदा हालत में एक्सचेंज अस्थिर डाँवाडोल रहता है और यह व्यापार के मार्ग में बाधक का काम करता है। पर इसके विरोधी के सामने कई ऐसे उदाहरण पेश किए गए जो और ही बात साबित करनेवाले थे। दक्षिण अमेरिका, रूस, आस्ट्रिया आदि देशों के साथ—एक्सचेंज में अस्थिरता होते हुए भी इंग्लैण्ड बड़े पैमाने पर व्यापार कर सका था और जिन्होंने यह उदाहरण पेश किए उनका पूछना था कि जब एक्सचेंज की घटाबढ़ी वहाँ बाधक नहीं हुई तब क्या कारण है कि सिर्फ भारतवर्ष में होगी? रालो ब्रदर्स नामक जगत्प्रसिद्ध कम्पनी के मालिक मि० स्टीफन रालो से कमेटी ने पूछा कि इधर रुपए की दर में जो घटाबढ़ी हुई है, उससे आपको अपने व्यापार में कोई दिक्कत उठानी पड़ी है या नहीं? मि० रालो ने जवाब दिया कि नहीं, कोई भी नहीं। उन्होंने वह तरीका भी बताया जो, व्यापारी लोग जोखिम से बचने के लिए काम में लाते थे

और ग्राज भी लाते ह । मान लीजिए, हमें दो महीने बाद कुछ डालरो की जरूरत पडगी । एक्सचेज ग्रस्थिर होने कारण कोई नही कह सकता कि उस समय उन डालरो के लिए हम कितने रुपए देने पडेंगे । पर हम इस विषय म निश्चिन्त हो जाना चाहते ह । एसी ग्रवस्था म हम फार वड ग्रर्थात ग्राग मिलनेवाले डालर ग्राज ही बक से खरीद लग ग्रौर समय ग्रान पर उन्हें देकर भुगतान कर दग । ग्रगर बक से ग्राग के डालर मिलन म दिक्कत हुई तो हम सम्भवत यहा कुछ माल खरीदकर ग्रमेरिका में बच दग जिससे हमें वहा समय पर डालर मिल जाय ।

सच पूछा जाय नो मुद्रा या विनिमय का प्रश्न सरकार या उसके कमचारियो या व्यापारियों का प्रश्न न होकर इस देश की जनता का—यहा क करोडो किसानो का—प्रश्न था । इस कथन की कसौटी यही थी कि चादी या एक्सचेंज क गिरने स उस जनता का—उन करोडो किसानों का—लाभ हुग्रा ह या हानि ? ग्रगर किसान जस उत्पादक उससे लाभान्वित हुए थ तो इससे यह सिद्ध था कि चादी हमारे देश के लिए हितकर थी और इसक सामने यह बात कोई महत्व पाने लायक नही थी कि ग्रगरेज कमचारी या व्यापारी उसस थोडी बहुत हानि उठा चुके थ और उससे ग्रस तुष्ट थ ।

ऊपर कहा जा चुका ह कि यूरोप म दाम गिरते ग्रा रह थ । सोना महगा हो रहा था इसलिए जो दाम सोने म दिए जाते थ वे कम हो रहे थ । भारतवर्ष म चादी न होती ग्रौर चादी का बाजार इस तरह न गिरता तो यहा भी दामो की यही गति होती । इसस किसान या दूसरे उत्पादक बड घाटे में रहते । किसान को लगान या कर या सूद के रूप म जो कुछ देना पडता ह वह एक निश्चित रकम होती ह । यह रकम वह देना [redacted] ग्रपने गाढे पसीने की कमाई से—ग्रपने खेत का ग्रन्न या गल्ला बचकर । इसका दाम जितना ही ग्रधिक मिले, उसके हक म उतना ही ग्रच्छा । मान लीजिए कि जिस समय यूरोप में दाम गिर रहे थ उस समय हमारे रुपए के विनिमय मूल्य में स्थिरता थी तो उस हालत में हमारे यहा भी दाम उसी हिसाब स गिरते और हमारे किसान बड संकट म पड जाते । पर हुग्रा यह कि चादी सस्ती हो चली—रुपए का विनि

मय मूल्य भी गिरता गया—और द्रव्य सस्ता होने का अर्थ है दामों का उठना, इसलिए दाम (सोने के गिरने पर भी) यहां ऊपर उठ रहे। सोना महंगा होकर हमारे किसानों पर आघात करने जा रहा था पर चांदी ने सस्ती होकर और बीच में पड़कर, उनको बचा लिया। इंग्लैण्ड में जिन्सों का दाम जहां १८६३ में १०० था वहां गिरते गिरते १८९३ में ६१ रह गया था। भारत में गल्ले का दाम जहां १८६३ में १०० था वहां १८९३ में १२९ था। अगर यहां चांदी का रुपया न होता और इसका मूल्य न गिरता तो यहां भी दाम ऊपर जाने के बजाय इंग्लैण्ड की तरह नीचे गिरते।

विदेशी व्यापार के आंकड़े भी यही सिद्ध करते हैं कि चांदी से हमारा लाभ ही हुआ।

१८७३—७४

निर्यात (एक्सपोर्ट)	५४ ९६ ०७ ८६० रु०
आयात (इम्पोर्ट)	३१ ६२,८४ ९७० रु०
आयात से निर्यात अधिक	२३ [illegible],२२ ८९० रु०

१८९२—९३

निर्यात (एक्सपोर्ट)	१०६ ४१ ४१ ६३० रु०
आयात (इम्पोर्ट)	६२ ६१ ८[illegible] ८३० रु०
आयात से निर्यात अधिक	४३,८० ६८ १०० रु०

भारतवर्ष में इम्पोर्ट (आयात) एक्सपोर्ट (निर्यात) पर निर्भर करता है। जब किसान अपना गल्ला बेचकर ज्यादा रुपए पाते हैं तब वे विदेशी वस्तुओं पर भी ज्यादा खर्च करते हैं। एक्सचेंज गिरते रहने से इम्पोर्ट बहुत कम हो जाना चाहिए था, पर असलियत में यह प्रायः दूना हो गया। फिर भी करेंसी एसोसियेशन वाले सन्तुष्ट नहीं थे और यही कहते जाते थे कि व्यापार चौपट हो गया।

नीचा एक्सचेंज भारतवर्ष के लिए लाभदायक है या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कलकत्ते की मशहूर कम्पनी एन्ड्र यूल के मालिक मि० जॉर्ज यूल ने (जो इण्डियन नेशनल कांग्रेस के चौथे अधिवेशन के प्रेसिडेंट हुए थे) कहा था कि—

'हां यह अवश्य लाभदायक है। मैं यह उत्तर गहरी समीक्षा परीक्षा के बाद दे रहा हूं।'

मि० यून का कहना था कि ब्रिटिश पूंजीपति यहां के उद्योग धन्धों का गला घोंट देना चाहते थे और इसी उद्देश्य से भारत सरकार के अंगरेज कर्मचारियों को आगे खड़ा करके सारा आंदोलन चला रहे थे। इसमें खास हाथ लंकाशायरवालों का था जो यहां की काटन मिलों को नष्ट कर डालना चाहते थे। चांदी के गिरने से इन मिलों को फायदा पहुंचा था और इनकी तरक्की हुई थी। १८७६–७७ में जहां ४७ काटन मिलें थीं वहां १८९१–९२ में १२७ हो चली थीं। इस बीच में स्पिण्डल (तकुए) १ १०० ११२ से ३ २७२ ९८८ और लूम (करघे) ९ १३९ से २४ ६७० हो चले थे। यहां की काटन मिलें चीन के बाजार में भी मैंचेस्टर से प्रतियोगिता करने लगी थीं और इसके व्यापार का काफी बड़ा हिस्सा उनके हाथ में आ गया था। नीचे के आंकड़ों को देखिए –

इंगलैण्ड से सूता चीन गया—

	कीमत पौंड में
१८९०	१ ७९७ ०००
१८९१	१ ५०७ ०००

भारतवर्ष से सूता चीन गया—

	कीमत पौंड में
१८९०	१७ ५०७ ०००
१८९१	१९ ३९७ ०००

१८७६ ७७ में भारतवर्ष से जहां ७ १२७ ००० पौंड सूता और १५ ५४४,००० गज कपड़ा चीन गए थे वहां १८९१ ९२ में क्रमशः १९१ ५४३ ००० पौंड और ७३ ३८४ ००० गज गए।

जापान भी उस समय यहां की मिलों के सूते का बड़ा खरीदार था। यह सब मैंचेस्टर के लिए असह्य था इसलिए उसकी ओर से इस बात की भरपूर कोशिश हुई कि भारतवर्ष से चांदी की मुद्रा उठा ली जाय और रुपए की एक्सचेंज दर उस समय जो ऊंची-से ऊंची हो सकती थी,

कर दी जाय। इस प्रकार एक्सचेंज को ऊँचा करने से चीन में भारतवर्ष को क्या हानि होनेवाली थी यह बताते हुए शंघाई की चीन एण्ड मिडलैण्ड नामक संस्था ने इंगलैंड कमेटी को लिखा था —

इस समय भारतवर्ष की मिल जब २[illegible]०० रु० का सूता यहाँ बेचती है तब उसके १०,००० डालर होते हैं। चीनवाले १०,००० डालर इसलिए देते हैं कि वे इससे कम में अच्छा सूता स्वयं तैयार नहीं कर सकते। पर अगर एक्सचेंज की दर [illegible] पेंस कर दी गई तो भारतवर्ष की मिल को तो पहले की ही तरह २[illegible]०० रुपए मिलेंगे पर चीन के खरीदार को इसके लिए यहाँ १२,[illegible]०० डालर देना पड़ेगा। बहुत सम्भव है कि सूता इतना महँगा हो जाने पर चीनवाले अपनी ही मिलें खोल लें और भारतवर्ष के लिए स्थिति यह हो जाय कि या तो वह अपना दाम नीचा करे या इस व्यापार से हाथ धो बैठे।

शंघाई के अलावा और स्थानों ने भी — जैसे हांगकांग और [illegible] ने — इस प्रस्ताव का विरोध किया कि भारतवर्ष से चाँदी की मुद्रा उठा ली जाय। उन स्थानों में भी यहाँ का रुपया चलता था और इसका मूल्य कृत्रिम हो जाने से वहाँ के उत्पादकों की भी हानि थी। पर उनका आवेदन निवेदन भी अरण्यरोदन ही रहा।

३

सोने का ग्रहण

मूल्य मापने के लिए पहले चादी का रुपया काम में लाया जाता था। स्वयसिद्ध मुद्रा होने के कारण १६५ ग्रेन चादी की सोने में जो कीमत होती वही रुपए की कीमत थी। पर अब रुपए का वह स्वरूप न रहा। रुपया अब प्रतीक मुद्रा कर दिया गया। वह सोने का प्रतिनिधित्व करने लगा। १६५ ग्रेन चादी की कीमत सोने में चाहे जितनी कम हो पर वह १६ पेस अर्थात् ७.५३३४४ ग्रेन सोने का द्योतक हो गई।

हम क्या रुपया जो कागज का चला ? गम न खा—रोटी तो गहू की रही। पर सच पूछिए तो चादी का रुपया भी अब एक प्रकार का नोट ही था। साधारण नोट से उसमे फर्क था तो इतना ही कि यह नोट कागज का न होकर चादी का था। मूल्य अब दोनो का ही कृत्रिम था।

चादी की टकसाल बन्द हो जाने पर स्थिति यह थी —

(१) चादी अब स्वयसिद्ध मुद्रा या मूल्य मापक नही रही।

(२) सरकार अपने को वचनबद्ध कर चुकी थी कि यह स्थान सोने को प्रदान किया जायगा।

(३) इस देश में चलन सिर्फ प्रतीक मुद्राओ का रह गया जिनमें कागजी नोटों के साथ चादी के भी नोट थे।

(४) साधारणत चादी की ऐसी प्रतीक मुद्रा कानूनन एक हद तक ही लेन देन के काम में लाई जा सकती है। उदाहरणार्थ इंग्लैंड में शिलिंग का सिक्का प्रतीक मुद्रा का काम करता था पर शिलिंग में एक पौंड से ज्यादा देने लेने को कोई भी कानूनन बाध्य नहीं था। पर यहां भारतवर्ष में रुपए पर ऐसी कोई कैद नही लगाई गई—चाहे जितना देना पावना हो रुपए में दिया लिया जा सकता था।

(५) अभी तक चलन में प्रत्यक्ष रूप से सोना नही आया था। टकसाल में या सरकारी खजाने में सॉवरेन १६ पेंस की दर से लिए जा

सकते थे। पर उन्हें दस-लेन का जनता कानूनन बाध्य नहीं थी।

(६) सरकार इस दर में (अर्थात ७५३३४४ ग्रेन सोना = १ रुपया) सोने के बदले रुपए देने को तैयार थी पर रुपए के बदले सोना देने को नहीं। रुपए का विनिमय-मूल्य १६ पेंस बांध दिया गया था इसलिए वह उससे ऊपर नहीं जा सकता था। जब ७५३३४४ ग्रेन सोना सरकार को देकर उससे एक रुपया लिया जा सकता था तब कोई दूसरे को एक रुपए के लिए उससे अधिक सोना क्योंकर देता? पर चूंकि सरकार ने रुपए के बदले सोना देने की कोई जिम्मेवारी नहीं ली थी, उसका विनिमय-मूल्य १६ पेंस से नीचे गिर सकता था।

(७) विनिमय मूल्य या एक्सचेंज १६ पेंस कर दिया गया था पर स्थायी रूप से नहीं। हमारे शासक देखना यह चाहते थे कि ऊंट किस करवट बैठता है। परिस्थिति अनुकूल हुई तो उनका इरादा उसको और भी ऊंचा कर देने का था। सोने के मान के लिए अंगरेजी में स्टैण्डर्ड शब्द व्यवहृत होता है। सोना स्टैण्डर्ड कर देने का अर्थ है इस बात की व्यवस्था करना कि लेन-देन के भुगतान के लिए लोगों को सोना मिल सके। पर इस समय यहां ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी। उधर चांदी भी स्टैण्डर्ड की जगह नहीं रह गई थी। फिर यहां का स्टैंडर्ड क्या था? वास्तव में इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नहीं था। सर जॉन लब्बक नामक एक प्रसिद्ध बैंकर थे, जो १८९८ वाले सोना चांदी कमीशन के मेम्बर रह चुके थे। उन्होंने इस विषय में अपनी राय जाहिर करते हुए कहा था कि यहां का तत्कालीन स्टैंडर्ड 'एक्सचेंज स्टैंडर्ड' था। इसकी व्याख्या उन्होंने इन शब्दों में की थी —

"जब कभी कोई सरकार ऐसे नोट (वे चाहे कागज के हों चाहे रुपए की तरह चांदी के) जारी करती है जो कानूनन सोने के बदले नहीं जा सकते, और उसकी कीमत ठहराने की जिम्मेवारी अपने ऊपर लेती है तब मेरी समझ में इस स्टैण्डर्ड को इससे अच्छा और कोई नाम न मिल सकने के कारण— 'एक्सचेंज स्टैण्डर्ड' कहना चाहिए।"

सर जॉन लब्बक इस प्रकार के स्टैण्डर्ड के विरोधी थे। उनकी खास आपत्ति यह थी कि इस प्रकार की व्यवस्था में करेंसी का घटना या बढ़ना

प्राकृतिक रूप से न होकर सरकार की मर्जी के मुताबिक हुआ करेगा जो बड़ी भयंकर वस्तु होगी।

चांदी के पक्षपाती बराबर यह कहते आ रहे थे कि जो लोग सोना सोना चिल्ला रहे हैं वे कपटी हैं और उनका उद्देश भारतवर्ष को सोना देना नहीं बल्कि हुंडी की दर को ऊंचा करके रुपए को ही बराबर चलन में रखना है। मिस्टर रालो ने अपने मन का स्पष्टीकरण करते हुए कहा था कि "मेरा विश्वास है कि सोने के स्टैण्डर्ड के प्रश्न की आड़ में दर असल एक्सचेंज का प्रश्न है। अगर भारतवर्ष में सोने का स्टैण्डर्ड हो चले तथा सोने और रुपए के बीच का एक्सचेंज रेट काफी नीची हो तो मैं हरगिज उस स्टैण्डर्ड का विरोध न करूंगा।" अब धीरे धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि सचमुच हमारे साथ एक तरह की चाल चली गई था— हमको सोने का स्टैण्डर्ड देने का वादा सचाई के साथ नहीं किया गया था। जो हर्शल कमेटी के मेम्बर रह चुके थे उनका भी सोने के सम्बन्ध में अपना अपना विचार था। १८९८ में बयान देते हुए लार्ड फारर ने तो यह कहा कि "अगर मेरा विश्वास यह न होता कि हर्शल कमेटी की रिपोर्ट भारतवर्ष को सोने का स्टैण्डर्ड दिलायगी तो मैं उस पर कभी दस्तखत न करता।" उनका कहना था कि यहां अभी तक सोने का स्टैण्डर्ड स्थापित नहीं हुआ है। उधर मि० कर्ज़ी ने जो लार्ड फारर की तरह हर्शल कमेटी के मेम्बर रह चुके थे फर्माया कि—"नहीं जब सरकार सर्वसाधारण से लगान या कर के भुगतान में सोना लेने को तयार है और रुपए की एक्सचेंज-दर १६ पेंस हो चुकी है तब समझना चाहिए कि सोने का स्टैण्डर्ड स्थापित हो चुका।" शुरू से ही यहां की मुद्रा प्रणाली को ऐसा रूप दिया गया कि वास्तविकता आसानी से किसी की समझ में न आ सके और उसकी जटिलता की आड़ में हमारे कर्ताधर्ता जो दस्तन्दाजी चाहें कर सकें। जिस रोज हर्शल कमेटी की रिपोर्ट तयार हुई थी उस रोज एक्सचेंज की दर १४,६२५ पेंस थी। रिपोर्ट निकल जाने पर २७ जून को यह दर एक दिन के लिए १६ पेंस हो गई पर वहां टहर न सकी। १८९३-९४ में औसत दर १४.५४४ पेंस रही। यह दर बाजार की हालत पर निर्भर करती है। ऐसा न होता तो सर-

कार विधान-मात्र से दर को और भी ऊँचा कर सकती थी। सरकार ने कानून पास कर दिया कि वह १६ पेंस की दर से एक रुपया देगी पर बाजार की हालत ऐसी नहीं कि किसी को रुपए के लिए सरकार के पास जाना पड़े और १६ पेंस से कम में ही रुपया मिल जाता है तो सरकार का कानून कानून ही रहेगा, वह दर चल न सकेगी। यह जरूर है कि सरकार अपनी नीति रीति में परिवर्तन कर बाजार की हालत बदल सकती है और बाजार को अपने पास आने के लिए मजबूर कर सकती है। पर यह अवस्था भी एक हद तक ही पैदा की जा सकती है।

दिसम्बर १८९३ में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ और उसमें यह प्रस्ताव पास हुआ कि— भारत-सरकार ने आनन फानन कानून पास करके सर्वसाधारण के लिए चाँदी की टकसाल का दरवाजा बन्द कर दिया। इस पर यह कांग्रेस असंतोष प्रकट करती है क्योंकि रुपए का मूल्य कृत्रिम और ऊँचा करके जनता पर परोक्ष रूप से एक नया कर लगा दिया गया है और इस कार्रवाई से हमारे व्यापार और उद्योग धन्धों को—खासकर कपड़े की मिलों को—बड़ी हानि पहुँची है।

टकसाल बन्द हो जाने के बाद चाँदी के दाम और एक्सचेंज की दर यह रही —

	चाँदी का औसत दाम पेंस	औसत एक्सचेंज पेंस
१८९४-९५	२८ ११/१६	१३ १०१
१८९५-९६	२९ ७/८	१३ ६३८
१८९६-९७	३० ३/४	१४ ४५१
१८९७-९८	२७ १/१६	१५ ३५४
१८९८-९९	२६ १५/१६	१५ ९७८

प्रारम्भ में कई साल तक एक्सचेंज १६ पेंस से बहुत नीचे रहा— अर्थात सरकार चाहती थी कि रुपए का दाम १६ पेंस तक रहे मगर रुपया प्रायः सस्ता बना रहा। अपनी नीति को असफल होते देख सरकार ने

रुपए का अभाव या कमी करना शुरू कर दिया। रुपया ढालना न ढालना अब सरकार के बस की बात थी। उसने नए सिक्कों की ढलाई बन्द कर दी जिससे बाजार में रुपए की टान बढ़ती गई। टकसाल बन्द होने से पहले नई करेंसी के रूप में हमें प्रायः सात से नौ करोड़ रुपए की हर साल जरूरत पड़ती थी। सिक्के तो इससे भी ज्यादा ढलते थे, पर उनमें से कुछ गला दिए जाते थे और उनके जेवर इत्यादि बन जाते थे। जो सिक्के चलन में रह जाते उनकी तादाद इतनी थी। हमारी जन संख्या हमारा वाणिज्य-व्यापार हमारी तरह-तरह की आवश्यकताएं बढ़ रही थीं और इसलिए यह आवश्यक था कि रुपए भी उन्हीं के अनुसार बढ़ती रहे। अगर स्वाभाविक रीति से वह बढ़ती तो १८९४ से १८९८ इन पांच वर्षों में कम से कम ४० करोड़ और रुपए नए सिक्कों के रूप में चलन में आ जाते। पर वास्तव में हुआ कुछ और ही। इतने समय में कुल पांच करोड़ रुपए के लगभग चलन में बढ़ पाए। सरकार प्रायः नए सिक्के ढालती ही नहीं थी इसलिए पुराने सिक्कों से ही सब को काम चलाना पड़ता था। १८९३ में चलने फिरते रहनेवाले रुपयों की संख्या १३८ करोड़ कूती गई थी। अगर यह संख्या ज्यों की त्यों बनी रहती तो भी हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपर्याप्त होती। पर स्वाभाविक कारण—जैसे गलाकर और काम में ले आना, जमीन में गाड़ देना, इस देश से बाहर भेज देना—उस संख्या में ह्रास ही करने वाले थे, इसलिए १८९७ की कूत के अनुसार यह केवल १२० करोड़ ठहरी थी। ऐसे समय में जब कि रुपयों की आवश्यकता दिन दिन बढ़ रही थी सरकार ने उनकी ढलाई बन्द कर और उनकी तादाद कम कर उनका मूल्य बढ़ा दिया और एक्सचेंज अन्त में १६ पेंस हो गया। पर पांच साल से कम में यह काम पूरा न हो सका।

यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि सर्वसाधारण के लिए टकसाल जरूर बन्द थी पर लोग सरकार को सोना देकर तो रुपया ले ही सकते थे फिर वे ऐसा क्यों नहीं करते थे? उत्तर यह है कि सोना लोग सरकार के पास तभी ले जाते जब और जगह बेचने में अधिक लाभ न होता। जब तक एक्सचेंज १६ पेंस न हुआ सोना बाजार में सरकारी दर

से महँगा बिकता रहा। सरकार तो ७.५३३४४ ग्रेन सोने के बदले एक रुपया देती पर इतने सोने का मूल्य बाजार में एक रुपए से अधिक था। ऊपर कहा जा चुका है कि इंग्लैंड में स्टैंडर्ड सोने का था और पौंड शिलिंग पेंस उस समय सोने के द्योतक थे। फिर जब बाजार में एक्सचेंज १६ पेंस होता तो उसका अर्थ यही था कि उतने सोने का मूल्य एक हुआ। अवश्य हाँ जब किसी को १४ पेंस (सोना) बेचने से ही एक रुपया मिल जाता है तब वह १६ पेंस (सोना) देकर एक रुपया लेने को तैयार न होगा। यही कारण है कि इतने समय तक कोई अपना सोना ले जाकर सरकार से रुपए मांगने न गया। इसी बात को दूसरी तरह यों कह सकते हैं कि उतने समय तक एक्सचेंज-नीति सफल न हो सकी।

चांदी की कहानी पूरी करने के लिए अब अमेरिका की भी कुछ घटनाओं का उल्लेख आवश्यक है।

जब १८९३ में भारत-सरकार ने अपनी टकसाल बन्द करके चांदी को मुद्रा पद से उठा ली तब अमेरिका ने शर्मन विधान को मन्सूख करके बाजार में चांदी खरीदना बन्द कर दिया। इससे चांदी और भी नीचे गिरी। भावों का यह हाल रहा —

	पेंस—
१८९३	३५ ५/८
१८९४	२८ १५/१६
१८९५	२९ ७/८
१८९६	३० ३/४
१८९७	२७ ९/१६
१८९८	२६ १५/१६
१८९९	२७ ७/१६

१८९६ में चांदी अमेरिका में एक बार फिर राजनैतिक आन्दोलन का मुख्य विषय बन बैठी। बहुत से लोग चाहते थे कि इस विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की फिर चेष्टा की जाय। पर डिमाक्रेट इसके विरोधी थे। उनका मत था कि अमेरिकन सरकार बिना औरों से किसी प्रकार का समझौता किए द्वि-मुद्रा प्रणाली ग्रहण कर ले और सोने तथा

चादी के बीच १ १६ का सम्ब ध स्थापित कर द । प्रसिडेंट के चुनाव म जात रिपब्लिकन पार्टी की रही और नए राष्ट्रपति न दोनो धातुओ के बीच सम्बन्ध निश्चित करन क उद्द्श से इग्लण्ड और फ्रास क साथ पत्रव्यवहार शुरू कर दिया । फ्रास की राय थी कि यह सम्ब ध या अनुपात १ १५½ हो, पर यहा भारत सरकार को यह मजूर न था । बाजार में उस समय (१८९७) यह अनुपात १ ३४ २० था—अर्थात् प्राय ३४ भाग चादी एक भाग सोन का बराबरी करती थी। फ्रास का बात स्वीकार करन का अर्थ होता चादी का मूल्य इतना अधिक कर देना कि १५½ भाग चादी ही एक भाग सोन का बराबरी कर सके। साथ ही इसका अथ होता रुपए क एक्सचज को अत्यधिक ऊचा कर देना —जो भारत सरकार की भी दृष्टि में सवथा अनुचित था। अमरिकन राष्ट्रपति क पत्रव्यवहार का कोई नतीजा नही निकला । इधर सान के उत्पादन म बड़ी वृद्धि होन लगी थी और सोना सस्ता होने लगा था। लोग थाड़ ही समय म चादी को भूल स गए ।

१८९८ में भारत सरकार न एक प्रस्ताव भारत सचिव क सामने रखा, जिसका उद्द्श था कज लेकर इग्लण्ड में सोने का एक रिजव कायम करना और रुपए गला-गला कर चादी के रूप में बच दना । सरकार का कहना था कि चलन म रुपया आवश्यकता स अधिक ह और एक्सचज को १३ पेंस तक उठान और वहा टिकान क लिए इस आधिक्य या बाहुल्य को मिटा दना जरूरी ह ।

२९ अप्रल को भारत-सचिव न एक नई क र सी कमेटी नियुक्त करक उस आदश दिया कि वह सरकार के प्रस्ताव पर विचार करे। इस कमटी क अध्यक्ष सर हेनरी फौलर थ जो स्वय भारत सचिव रह चुक थ । उसक दूसरे सदस्यो में सर जान म्यूर सर डविड बावर, लाड वलफर मि० कम्पबल आदि थ । अनुसधान क लिए जो क्षत्र कमेटी का दिया गया था वह भारत सरकार क प्रस्ताव तक ही परिमित नही था भारत-सचिव क आदेशानुसार यह भारतीय मुद्रा प्रणाली स सम्बन्ध रखनेवाली हर बात का अनुस धान कर सकती थी और उसपर अपनी राय द सकती थी।

कमेटी के सामने मुख्य प्रश्न ये थे —

(१) यहां का मान या स्टैण्डर्ड सोना हो या चांदी ?

(२) चांदी और सोने के बीच सम्बन्ध क्या हो ?

बहुतेरे गवाहों ने इस बात पर जोर दिया कि १८९३ में जो भूल हुई उसके लिए यह आवश्यक है कि चांदी अपनी पुरानी जगह पर फिर से स्थापित कर दी जाय। कुछ गवाह ऐसे भी थे जो चांदी को उसी हालत में फिर से उसकी पुरानी जगह पर लाने के पक्षपाती थे, जब कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौता होकर दोनों धातुओं का सम्बन्ध सदा के लिए निश्चित हो जाय।

यह हुई चांदी के पक्षपातियों की बात। सोने के पक्षपाती भी दो दलों में विभक्त थे। एक दल चाहता था कि सोने का मान तो हो ही साथ-साथ सोने के सिक्के भी चलन में हों। दूसरा दल कहता था कि मान तो सोने का रहे पर यहां उसके सिक्के न चलाए जाय।

गवाहों में इस बार दो भारतवासी थे—श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त, (कांग्रेस के भावी प्रेसिडेंट) और बम्बई के पारसी व्यापारी मि० सर खान जी रुस्तमजी। दोनों ने ही सरकार की नीति की कड़ी आलोचना की।

चांदी के पक्षपातियों की दलील यह थी कि उससे भारतवर्ष को कोई लाभ हुआ था और ऐसी वस्तु का परित्याग हर्गिज न करना चाहिए था। १८९३ में परिस्थिति और भी उपायों से काबू में लाई जा सकती थी। इसके लिए मुद्रा प्रणाली में उलट फेर की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस बीच में यह अनुभव भी हो गया था कि इस क्षेत्र में सरकार की दस्तन्दाजी से क्या-क्या अनर्थ हो सकते हैं। व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि समाज की आवश्यकताओं के अनुसार करेंसी मुद्रा की मात्रा स्वतः घटती बढ़ती रहे। पर यह प्रबन्ध जब सरकार अपने हाथ में ले लेती है तब यह घटना-बढ़ना उसकी इच्छानुकूल होने लगता है। फिर तो यह हो सकता है —जैसा कि यहां हो चुका था—कि रुपए की सख्त जरूरत है, और सरकार उसे देने से इनकार कर रही है। देश में रुपए-पैसे का दुर्भिक्ष है और सरकार कहती है कि नहीं रुपए का बाहुल्य है हम सिक्कों को चलन से निकाल कर खजाने जा रहे हैं। पर करेंसी का स्वत

घटना-बढ़ना तभी हो सकता है जब टकसाल का दरवाजा सबके लिए खुला रहे, जिसको मुद्रा की आवश्यकता हुई अपना सोना या चांदी टकसाल में ले गया और उसके सिक्के बना लिए। यहां भारतवर्ष में सोने की ढलाई की मात्रा कम थी इसलिए यह और भी आवश्यक था कि चांदी की टकसाल फिर से खोल दी जाय। इससे सारी कृत्रिमता और तज्जनित दोष दूर हो जायगे।

उस समय चांदी का दाम २७ और २८ पेंस के बीच था पर चांदी के पक्षपातियों का कहना था कि अगर टकसाल खोल दी गई और यहां चांदी के सिक्के पूर्ववत ढलने लगे तो बाजार शीघ्र ही ३० पेंस हो चलेगा। इसका अर्थ होगा १२ पेंस का रुपया। पर विपक्षी यह कहते कि इस बात की गारण्टी ही क्या है कि चांदी या एक्सचेंज इससे भी नीचे न गिरेगा? मि० राली ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था कि 'संसार में सभी कुछ सम्भव है पर हम व्यापारी अनुभव से जानते हैं कि क्या सम्भव है और क्या असम्भव। जहां व्यावहारिक बातों की चर्चा हो वहां ऐसे प्रश्न उठाने से क्या लाभ?' मि० डक्न नामक दूसरे गवाह से भी यही प्रश्न किया गया और उनका उत्तर इस प्रकार था — हमारे स्काटलैण्ड में जब कभी कोई ऐसा सवाल करता है तब इसका जवाब एक लोकोक्ति के रूप में दिया जाता है। वह लोकोक्ति यह है कि अगर आसमान गिर पड़े तो गानेवाले पक्षियों के दम घुट जायगे। पर बावजूद इसके वे पक्षी गाते ही जाते हैं।

लार्ड एल्डनहम इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध बैंकर थे और बैंक आव इंग्लैण्ड के गवर्नर रह चुके थे। इन्होंने अपने बयान में भारत सरकार की कार्रवाई की तीव्र आलोचना की और उसे जुर्म तक बताया। लार्ड एल्डनहम द्वैत मुद्रा प्रणाली के पक्षपाती थे और सोने चांदी का सम्बन्ध निश्चित करने के लिए चाहते थे कि फिर से अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के लिए प्रयत्न किया जाय।

मि० राबर्ट बार्कर नामक व्यवसायी भी ऐसा समझौता चाहते थे। उन्होंने अपने इजहार में कहा —

मेरा विश्वास है कि भारत में चांदी की टकसाल का दरवाजा फिर

म खाल देन का निश्चय होते ही कुछ एसी शक्तिया काम करने लगगी जो चान्दी के मूल्य को बढाये बिना न रहेगी। भारतीय टकसाल बन्द होने से पहले चादी का दाम ३८ पेंस से कभी नीचे नहीं गिरा था, और एसे निश्चयमात्र से ही उस दाम में तेजी आ जायगी। चीन और अफ्रीका में भी चान्दी के उपयोग के लिए बहुत बड़ा क्षेत्र है।'

सोने के पक्षपाती यही कहते आते थ जो टकसाल बन्द होने से पहले बार-बार कह चुके थ— चादी काफी चचल डावाडोल अस्थिर, अव्यवस्थित साबित हो चुकी है। एक्सचेंज को अपने साथ नीचे गिरा कर इसने उन सबको नुकसान पहुचाया है - और उनमे भारत-सरकार का नाम सबसे पहले लेने लायक है—जिन्हें रुपया विलायत भेजना पड़ता है।' पर इनसे आगे सोने के सब पक्षपाती साथ आने को तयार न थे। कोई हमें सोना किसी रूप में देना चाहता था कोई किसी रूप में। कुछ तो सोना नाममात्र को ही देनेवाले थे।

इन सबके सामने पहला सवाल यह था कि जो रुपए चलण म थे और जो प्रतीक मुद्रा बना दिए गए थे उनके बदले जनता की माग होने पर सरकार सोना देने को तयार रहेगी या नहीं? सर जान लबक का कहना था कि जब तक सरकार बदले में सोना देने को तयार नहीं होती तब तक मान का मान या स्टडड मायने रख ही नहीं सकता। पर सोने के पक्षपातियों ने एक स्वर से यही कहा कि अगर सोने के स्टडड की प्रतिष्ठा के लिए यह आवश्यक हो तब तो न होगा बास न बजेगी बासुरी। रुपयों के बदले सरकार सोना देने को बाध्य न हो इसी आधार पर सबने अपनी अपनी स्कीम पेश की। हा अगर किसी साल भारत की देनदारी ज्यादा हुई और उसके लिए भुगतान में सोना बाहर भेजना आवश्यक हो गया तो इन स्कीमों में इस बात की प्राय व्यवस्था थी कि सरकार रुपए लेकर उस काम के लिए सोना दे।

आपस का मतभेद विशेषत इस बात पर था कि देश के भीतर चलण में सोने के सिक्के रहे या नहीं। मि० मकलियड लॉर्ड नार्थब्रुक सर मम्फ्रस मार्शल्य सर एडगर विल्सन आदि लोग इस बात के पक्ष में थे। उनका कहना था कि जब तक सोने के सिक्के चलन में न होंगे यहाँ

की मुद्रा प्रणाली पूर्णतः स्वस्थ न हो सकेगी। सर एडगर विल्सन मिस्र सरकार के सलाहकार रह चुके थे। उनका कहना था कि सिद्धान्ततः यह सम्भव है कि सोने का मान या स्टैण्डर्ड बिना सोने के सिक्कों के चलन में हो, पर यह अपवादस्वरूप है, और जिस मुद्रा प्रणाली में ऐसी व्यवस्था हो वह कभी उत्तम नहीं कही जा सकती। सोने के मान या स्टैण्डर्ड का आधार ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें आवश्यकतानुसार सोना देश से बाहर बेरोक टोक जा भी सके और देश के भीतर भुगतान के लिए सोने के सिक्कों का स्वच्छन्द व्यवहार हो सके। इस प्रकार की व्यवस्था उस व्यवस्था से अधिक प्रचलित और हितकर है जिसमें लेन-देन के लिए केवल प्रतीक मुद्रा काम में लाई जाती हो। यह भी कहा जा सकता है कि जहाँ सोने का मान या स्टैण्डर्ड है पर चलन में सोना नहीं है वहाँ सरकारद्वारा दस्तन्दाजी विशेष रूप से होगी। पर इस प्रकार की दस्तन्दाजी बहुत ही बुरी चीज है। जो भी मुद्रा प्रणाली हो वह स्वतः काम करनेवाली होनी चाहिए और सरकारद्वारा हस्तक्षेप कुछ खास परिस्थितियों में ही—और वहाँ भी कम से कम—होना चाहिए। सोने के सिक्के के विरोधी यह कहा करते कि चलन में सोना अधिक काल तक नहीं ठहर सकता—लोग उसे दबाकर उठा ले जायँगे। इसके उत्तर में मि० मकलियन का कहना था कि सोना इस देश के लिए कोई नई चीज नहीं थी। सोने के सिक्के यहाँ सदियों तक चल चुके थे। १८५३ में पहले जो सोने के सिक्के यहाँ चलन में थे उनका तखमीना था बारह करोड़ पौंड। नहीं, भारतवर्ष को सोने के सिक्कों का ऐसा लोभ या मोह नहीं है कि वह उन्हें चलन में रहने ही न दे।

सोने के सिक्के के विरोधियों में बंगाल-बैंक के कर्मचारी मि० लिण्डसे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह इस विषय पर वर्षों से लिखते आ रहे थे और जब फौलर कमेटी बैठी तब उसके सामने इन्होंने एक स्कीम रखी जो इनके नाम से मशहूर है। इनकी स्कीम संक्षेप में यह थी—

सोना मान या स्टैण्डर्ड कर दिया जाय पर चलन में सोने के सिक्के न हों। देश के भीतर रुपए और नोट करेंसी का काम करें। लन्दन में एक करोड़ पौंड कर्ज लेकर एक रिजर्व (कोष) कायम किया जाय

जिसका नाम गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व हो। रुपए की एक्सचेंज-दर ऊपर और नीचे जाने से रोक दी जाय। जब किसीको रुपयों की जरूरत हो तब वह लन्दन में सरकार को स्टर्लिंग दे और १६ १/८ पेंस की दर से यहां उससे रुपए ले ले। इसके विपरीत जब किसीको विलायत में स्टर्लिंग की जरूरत हो तब वह यहां रुपया देकर १५ ३/४ पेंस की दर से वहां सरकार से स्टर्लिंग ले ले। १०,००० से कम किसीको रुपए न मिलें और १,००० से कम किसीको स्टर्लिंग न मिले। अगर किसी समय स्टर्लिंग की मांग इतनी अधिक हो कि रिजर्व खाली हो जाने का डर हो तो उस हालत में सरकार भारतवर्ष में चलन वाले रुपयों को कुछ हद तक गला डाले और चांदी को लन्दन भेज कर बेच दे और उसका स्टर्लिंग कर दे।

इस स्कीम का खास उद्देश्य था भारतवर्ष में करेन्सी के लिए सोने का व्यवहार न होने देना और इसमें इस बात पर बहुत जोर दिया गया था कि सोने का जो रिजर्व हो वह लन्दन में ही रहे। मि० लिंडसे का कहना था कि लन्दन में सोना रहने से ब्रिटिश साम्राज्य के आर्थिक केन्द्र की मजबूती बनी रहेगी और वह रिजर्व को भारतवर्ष में रखने के कट्टर विरोधी थे।

पर उस समय भारत-सरकार का मत और ही था। उसके अर्थ-सदस्य सर जेम्स वेस्टलैण्ड ने इस स्कीम की आलोचना करते हुए कहा कि भारतवर्ष में नई मुद्रा प्रणाली की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि सर्वसाधारण को उसपर पूरा विश्वास हो। और उस विश्वास सम्पादन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि सोने का रिजर्व इसी देश में रखा जाय। अगर रिजर्व लन्दन में रखा गया और लोगों को यह ख्याल हो चला कि भारत सचिव या व्यापारियों की मांग पूरी करने में यह कभी भी गायब हो सकता है तो विश्वास हर्गिज न जम सकेगा। सर जेम्स वेस्टलैण्ड की एक टिप्पणी यह थी कि रिजर्व ६,००० मील दूर न रखकर भारतवर्ष में रखा जाय तो उसकी मिकदार चाहे जो हो वह हर हालत में ज्यादा मुफीद साबित हो सकता है।

और लोगों ने भी इस स्कीम को आपत्तिजनक बताया और इसकी कड़ी आलोचना की। इसका सबसे बड़ा दोष यह बताया गया कि इसमें

सरलता और स्वाभाविकता को तिलांजलि दे दी गई थी और सारी व्यवस्था जटिल से-जटिल और कृत्रिम-से कृत्रिम बना दी गई थी। प्राय सब कुछ सरकार के हाथ म या उसकी मर्जी पर छोड दिया गया था, और विशेष ध्यान इस बात का रखा गया था कि सोना यथासम्भव लन्दन में ही केन्द्रीभूत रहे।

यद्यपि फौलर कमेटी ने यह स्कीम स्वीकार नहीं की तथापि हमारे शासकों की कारसाजी से देश में जो मुद्रा प्रणाली प्रचलित हुई वह बहुत कुछ इसी स्कीम के अनुसार थी। इसीलिए इस विषय के इतिहास में लिण्डसे स्कीम को विशेष महत्त्व प्राप्त है।

कमेटी ने अपना निर्णय देते हुए पहले तो भारत सरकार के प्रस्ताव को यह कह कर अस्वीकार्य बताया कि इस बीच म परिस्थिति बहुत कुछ बदल चुकी थी—एक्सचेंज १६ पेंस तक पहुंच गया था और स्थिर हो रहा था—अब वह समस्या नहीं रह गई थी—अगर रुपए चलन से निकाल लिए गए तो यहां मुद्रा सम्बन्धी स्थिति भयंकर हो जायगी और अगर उन रुपयों को गला कर बेच दिया गया तो चांदी और भी नीचे गिर जायगी जिससे चीन-जैसे चांदी की मुद्रावाले देश और भारतवर्ष के बीच के एक्सचेंज में हलचल सी उपस्थित हो जायगी।

चांदी और सोने के बीच के प्रश्न पर कमेटी ने अपना फैसला चांदी के खिलाफ दिया और भारतवर्ष के लिए सोने को ही श्रेयस्कर बताया। 'भारतवर्ष म मूल्य का मान या मापक सोना ही होना चाहिए—चाहे वह सोने के सिक्कों के साथ हो चाहे सोने के रिजर्व या कोष के।'

पर कमेटी ने उन सब स्कीमों को त्याज्य ठहराया जिनमें बिना सोने के सिक्कों के सोने का मान या स्टैण्डर्ड चलाने की बात थी। ऐसे सिक्के इस देश म बहुत समय तक चल चुके थे और इतिहास से इस आशंका की पुष्टि नहीं होती थी कि जैसे छलनी से पानी बाहर निकल जाता है वैसे ही इस देश में चलन से सोने के सिक्के निकल जायंगे। कमेटी की सिफारिश यह थी —

हम लोग इस बात के पक्ष म हैं कि ब्रिटिश सावरन या गिनी का भारतवर्ष म भी चलन होने लगे और लोग उसे लेन देन को बाध्य कर

दिए जायं। साथ ही, ब्रिटिश टकसाल की आस्ट्रेलिया में जो तीन शाखाएं हैं उन्हें जिन शर्तों पर सोने के सिक्के (सावरेन) ढालने का अधिकार प्राप्त है उन्हीं शर्तों पर भारतवर्ष की टकसालों को भी ऐसे सिक्के अबाधित रूप से ढालने दिया जाय। इसका फल यह होगा कि सब सावरेन समान होंगे और उनका चलन ग्रेट ब्रिटेन में तथा भारतवर्ष में दोनों जगह होने लगेगा।

रुपयों के बारे में कमेटी ने लिखा कि स्वयंसिद्ध मुद्रा सावरेन होगा, और रुपए प्रतीक मुद्रा का काम करेंगे। पर लेन-देन में रुपयों का व्यवहार परिमित या नियन्त्रित करना संभव नहीं, इसलिए इस विषय में प्रतीक मुद्रा स्वयंसिद्ध मुद्रा के ही समान होगी। कमेटी ने अमेरिका के संयुक्त राज्य और फ्रांस इन दो देशों के उदाहरण देकर यह दिखाया कि वहां सोने का मान या स्टैंडर्ड था फिर भी चाहे जिस हद तक हो सोने चांदी के सिक्के लेन-देन को बाध्य थे। कमेटी की राय में आवश्यकता केवल इस बात की थी कि रुपयों की तादाद जरूरत से ज्यादा न बढ़ाई जाय, और उसकी सिफारिश थी कि जब तक चलन में सोने का परिमाण अत्यधिक नहीं हो जाता तब तक और रुपए न ढाले जायं।

रुपयों के बदले भारत सरकार सोना देने को बाध्य हो—ऐसी कोई सिफारिश कमेटी ने नहीं की।

एक्सचेंज की स्थायी दर के सम्बन्ध में कमेटी ने अपना निर्णय १६ पेंस के ही पक्ष में दिया। उसकी खास दलील यह थी कि मौजूदा दर यही है और यह प्रायः डेढ़ साल से कायम है। इसको बदल करके किसी भी दूसरी दर को इसकी जगह बिठाना—बने को बिगाड़ना, बसे को उजाड़ना और अनगिनत आदमियों के साथ अन्याय करना होगा।

टकसाल बंद करके जो परिस्थिति पैदा कर दी गई थी उसमें सरकार १६ पेंस ही क्यों, जो दर चाहती कायम कर सकती और टिका सकती थी। सिक्कों की ढलाई सब उसके हाथ की बात थी—उनकी तादाद या संख्या कम करके वह उनका मूल्य चाहे जितना ऊंचा कर सकती थी। सवाल सिर्फ यही था कि लोगों को अपनी यन्त्रणा के रूप में इसका क्या दाम चुकाना पड़ेगा और इसमें कितना समय लगेगा? कृत्रिम

ने यह सिफारिश करना मुनासिब समझा कि वह १६ के बजाय १५ पेंस कर दी जाय।

इधर चादी के पक्ष विपक्ष की बातें हो रही थी, उधर सोने का उत्पादन वेग से बढ रहा था और सोने में चीजो के दाम भी ऊँचे होने लगे थ। १८९८ ९९ में दाम ऊचे होन के कारण इस देश के माल की माग अच्छी रही और एक्सपोर्ट की उन्नति हुई। सोने के उत्पादन में इस वृद्धि के कारण ससार के मुद्रासम्बन्धी इतिहास म एक नए अध्याय का आरम्भ हो चुका था या होनवाला था। भारतवष में भी अब दाम बढने लगे और कुछ समय बाद लोग १६ पेंस के रुपयो को भूल से गए और उसीको स्वाभाविक समझने लगे।

यहा भारत सरकार के आय व्यय के विषय में कुछ कह देना आवश्यक है। लार्ड रिपन के जाने के बाद इस देश म कई नए टक्स लगाए गए जिससे करदाता का बोझ बहुत भारी हो गया। १८८२ ८५ में सरकार प्रतिवष कर के रूप म जो कुछ ले चुकी थी उसको आधार मानकर स्व० गोखले न अपनी एक स्पीच में दिखाया था कि १८८५ ९८ इन १४ सालो म सरकार न जनता से १२० करोड अधिक लिया था। इसमें से ८० करोड तो फौजी खच में चला गया था और बाकी दूसरी मदो में। शिक्षा के लिए इसम से कुल एक करोड ही प्राप्त हुआ था।

पहले सरकार की ओर से कहा जाता कि एक्सचेज गिरन से जो हानि होती है वह उसे टैक्स घटान के प्रश्न पर विचार भी करन नहीं देती। जब एक्सचेंज १६ पेंस कर दिया गया और सरकार की यह गहन समस्या हल हो गई तब लोगो को आशा होन लगी कि हमारा बोझ अब हलका कर दिया जायगा। पर उनका बोझ ज्यो का त्यो बना रहा और उनकी आशा निराशा में परिणत हो गई। रुपए की कीमत जब १२ और १३ पेंस के बीच थी तब सरकार को जितना खर्च पडता था उसमें—रुपए की कीमत १६ पेंस होजान पर—चार और पाच करोड के बीच की बचत होने लगी पर इस बचत का कई साल तक जनता को कोई लाभ न पहुंचा। अब सरकार की नीति यह हो चली कि आय से व्यय पूरा होना ही पर्याप्त नहीं कहा जा सकता—आय इतनी होनी चाहिए कि प्रतिवर्ष

व्यय पूरा कर देने के बाद भारी बचत रहे। १९०१ २ में समाप्त होने वाले पांच वर्षों में यह बचत १२ २६ करोड़ रुपए रही। श्रीयुत गोखले का कहना था कि अगर युद्ध और अकाल के कारण व्यय में वृद्धि न होती तो सरकार की आय उसकी आवश्यकता से प्रतिवर्ष प्राय ६॥ करोड़ रुपए अधिक होती।

इस विषय पर दूसरे अध्याय में और भी प्रकाश डाला गया है।

४

आड से शिकार

फौलर कमेटी ने बहुमत से जो सिफारिशें की थी उन सबको भारत सचिव ने मंजूर कर लिया। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा कि—' इस रिपोर्ट के महत्व के अनुसार इस पर ब्रिटिश सरकार ने ध्यानपूर्वक विचार किया है। और इसमें जो तथ्य और युक्तियां पेश की गई है उन्हें सारगर्भित मानती हुई वह इस नतीजे पर पहुंची है कि इसके उसूल मान लिए जाय और वे अमल में लाए जाय। पर इतना कह कर भारत सचिव और उनके सलाहकारों ने रिपोर्ट को ताक पर रख दिया और उन उसूलों के ही खिलाफ काम करना शुरू कर दिया।

उन्होंने नई मुद्रा प्रणाली के संगठन या रचना में कानून से कम—बहुत कम—काम लिया और अपनी निरंकुशता प्राय अक्षुण्ण रखी। जो कुछ करते रहे हुक्मनामों या फरमानों के जरिए, जो उनके सुविधानुसार बदले जा सकते थे।

इस समय में कब कौन-सी घटना घटी इसका एक संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है —

१८६९—एक एक्ट पास हुआ, जिससे लोग सॉवरेन या गिनी लेने देने को बाध्य हो गए। दर रही १६ पेंस = एक रुपया।

१८९९ १९०३—भारतीय टकसालों में सॉवरेन ढालने के सम्बन्ध में समझौते का जो प्रयत्न हो रहा था वह छोड़ दिया गया।

१९००—रुपयों की ढलाई से जो मुनाफा होता उससे लन्दन में गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व-सुवर्णनिधि या सुवर्ण-कोष की रचना की गई।

१९०४—भारत-सचिव की ओर से एलान किया गया कि १६$\frac{1}{8}$ पेंस की दर से वह चाहे जितने की हुंडी भारत-सरकार पर बेचने को तैयार रहेंगे।

१९०५—नोटों की पुन्नी के लिए जो करेंसी रिजर्व या उसकी ओर

से कुछ सोना बक आव इंगलण्ड में रखा गया और यह विधान भी बना कि उस रिजर्व का एक हिस्सा लन्दन में कर्ज या उधार दिया जा सकेगा।

१६०६—पहले यह व्यवस्था थी कि भारतवर्ष में सोना देनेवाले को सरकार रुपए दे देती। अब यह व्यवस्था कर दी गई कि सिर्फ सोने के ब्रिटिश सिक्के देनेवाले रुपए पा सकेंगे।

१६०७—गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व की एक शाखा इस देश में खोली गई जिसमें रुपए रखे जा सकते थे।

१६०८—कलकत्ते में लन्दन पर १५$\frac{1}{3}$ पेंस की दर से हुंडियां बेची गई और लन्दन में गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व से उनका भुगतान किया गया।

१६१०—दस और पचास रुपए के नोट प्रचलित भारतीय कर दिए गए और, यह विधान बना कि सोने के ब्रिटिश सिक्कों के बदले नोट मिल सकेंगे।

१६११—सौ रुपए के नोट भी प्रचलित भारतीय कर दिए गए।

१६१३—भारतीय मुद्रा प्रणाली की जांच के लिए एक शाही कमीशन नियुक्त हुआ।

अब फौलर-कमेटी की सिफारिशों को लेकर हम यह दिखाना चाहते हैं कि सरकारद्वारा स्वीकृत हो जाने पर भी वे कहां तक अमल में लाई गई। सबसे पहले सोने के सिक्के की बात लीजिए।

कमेटी ने सिफारिश की थी कि ब्रिटिश सावरेन लेन-देन को लाग बाध्य कर दिए जाय। १८९९ में एक एक्ट के द्वारा यह विधान कर दिया गया। कमेटी की दूसरी सिफारिश यह थी कि जिन शर्तों पर ब्रिटिश शाही टकसाल आस्ट्रेलिया में सावरेन की ढलाई होने देना है उन्हीं शर्तों पर यहां भी होने दे। ब्रिटिश सरकार की ओर से या उसके अर्थ विभाग की ओर से इसका ऐसा विरोध हुआ कि यह सिफारिश सिफारिश ही रह गई। वास्तव में वह विरोध जाहिरा तौर पर नहीं किया गया। पर तरह तरह की जो आपत्तियां पेश की गई उनसे उनके असली भाव के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रह सकता था।

पहले तो शाही टकसाल ने यहां ढलाई की व्यवस्था करने के विषय में अड़चनें डालीं, पर जब इनसे भी काम बनते न देखा तब अन्त में ब्रिटिश अर्थ विभाग ने यह कहना शुरू किया कि आखिर भारतवर्ष में सावरेन

ढालने की ऐसी जरूरत ही कौन सी है ? १८९९ से १९०३ तक पत्र व्यवहार ही चलता रहा और अन्त में भारत सरकार ने हार मानकर यह प्रयत्न ही छोड दिया। हां उसकी ओर से यह बराबर कहा जाता रहा कि हमारा लक्ष्य ज्यों का त्यों बना हुआ है और हम आशा करते हैं कि हम किसी न किसी दिन सोने का सिक्का यहां ढाल सकेंगे। यहां यह कह देना आवश्यक है कि ब्रिटिश सरकार या ब्रिटिश शाही टकसाल को हमारे मार्ग में रोड़े अटकाने का अवसर इसलिए मिल गया कि हम ब्रिटिश सॉवरेन की ढलाई की इजाजत मांगते थे। अगर हम अपना ही कोई सिक्का—जैसे मोहर या अशरफी—ढालने की बात करते तो हमारे मार्ग में यह कठिनाई उपस्थित न होती।

१९१२ में सर विट्ठलदास ठाकरसी ने बडी व्यवस्थापिका सभा में इस आशय का एक प्रस्ताव पेश किया कि भारतीय टकसालों में सोने के भारतीय सिक्के ढालने की व्यवस्था की जाय। उन्होंने अपने भाषण में कहा —

'इस विषय में कभी कोई सन्देह नहीं रहा है कि हमारी मुद्रा नीति का लक्ष्य है सोने के सिक्के के साथ सोने का मान या स्टैण्डर्ड। पर आज तक सोने के सिक्के की व्यवस्था न हो सकी। विलम्ब से इस देश की बड़ी हानि हो रही है और इस विषय की कठिनाई भी बढ़ती जा रही है। कहा जाता है कि इस देश के लोग इतने गरीब हैं कि यहां सोने के सिक्के चलाना बुद्धिमता का काम नहीं। पर यह दलील लचर है। सोने के स्टैण्डर्ड के लिए जब यहां के लोग गरीब नहीं तब, सोने के सिक्के के लिए क्योंकर हो सकते हैं ? इस समय तो यह अवस्था है कि हमारी सोने से जो भलाई हो सकती है वह नहीं हो रही पर जो बुराई हो सकती है वह हो रही है।

श्रीयुत गोखले ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि मुद्रा प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिसका सचालन प्राकृतिक रीति से होता रहे—जिसमें सरकार का हस्तक्षेप या दखल नहीं के बराबर हो, और यह प्रणाली तभी हो सकती है जब फौलर-कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार उसका आधार सोना कर दिया जाय।

सरकार की ओर से कहा गया कि अवश्य ही सारे प्रश्न पर फिर से विचार करने की जरूरत है और हम इसे भारत-सचिव के सामने रखने जा रहे हैं। इस पर सर विट्ठल दास ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया।

भारत सरकार ने भारत सचिव को लिखा और भारत-सचिव को फिर ब्रिटिश सरकार के अर्थ विभाग का दरवाजा खटखटाना पड़ा। पर इसकी मनोवृत्ति या भाव में कोई अन्तर नहीं पड़ा था। फिर वही किस्सा शुरू हुआ। कहा गया कि भारत सरकार इस झमेले में क्या पड़ना चाहती है? सावरन ढालने के लिए हमारी टकसाल जरूरी है। अगर भारत-सरकार की टकसाल का प्रबन्ध हमने हाथ में ले लिया तो यह असुविधाजनक होगा और अगर सावरन ढालने के लिए हमने अपनी शाखा वहां खोल दी तो इसमें खर्च बहुत ज्यादा पड़ेगा। भारत-सचिव की अपनी राय सोने के सिक्के के पक्ष में नहीं थी पर भारत-सरकार का आग्रह देखकर उन्होंने लिखा कि ब्रिटिश अर्थ विभाग की शर्तें आपको मंजूर न हों तो मैं यह इजाजत देने को तैयार हूं कि आप दस रुपए की अपनी मोहर ढालना शुरू कर दें। भारत सरकार इस पर राजी हो गई। पर भारत-सचिव ने लिखा कि कुछ भी करने से पहले सब साधारण की राय दर्याफ्त कर लेना जरूरी है। भारत-सरकार को यह बुरा-सा लगा और उसने जवाब दिया कि व्यवस्थापिका सभा में और उसके बाहर, इस विषय की कितनी ही बार आलोचना हो चुकी है और यह स्पष्ट हो चुका है कि यहां का लोकमत जोरों से इस प्रस्ताव का समर्थन करता है, बल्कि यहां तो यह पूछा जाता है कि जो इजाजत कनाडा और आस्ट्रेलिया को मिल चुकी है वह भारत को क्यों नहीं मिल रही है? १४ फरवरी १९१३ को भारत-सचिव ने सूचित किया कि जो शाही कमीशन नियुक्त होने जा रहा है वह इस विषय का भी अनुसंधान करेगा। भारत-सरकार अब और कर ही क्या सकती थी? फौलर-कमेटी की जो सिफारिश भारत-सचिव द्वारा स्वीकृत हो चुकी थी उसपर १४ साल बाद अब दूसरा कमीशन अपनी राय देने जा रहा था कि उसे अमल में लाना कहां तक ठीक होगा!

रुपए का वजन जैसा कि पहले कहा जा चुका है, १८० ग्रेन

(३/८ ग्रौंस) होता ह जिसमे खालिस चान्दी इस समय १६५ ग्रेन थी। रुपए की नकली कीमत १६ पेंस थी, ग्रौर ग्रसली कीमत इससे बहुत कम। जब चादी का दाम लन्दन के बाजार में २४ पेंस होता तब सरकार को एक रुपया ढालन में प्राय ९.१८१ पेंस खच पडता। जब चादी का दाम ३२ पेंस होता तब यह खच १२.२४१ पेंस बठता। ग्रसली ग्रौर नक्ली कीमता के बीच जो फक था उसे सरकार ग्रपना मनाफा सम झती थी।

फौलर कमेटी की सिफारिश थी —

'रुपयों की ढलाई स जो मुनाफा हो वह सरकार की साधारण ग्राय म शामिल न किया जाय। सोन में उसका एक खास रिजव रखा जाय ग्रौर यह रिजव पेपर करेन्सी रिजव या सरकारी रोकड से बिलकुल ग्रलग हो।

कमेटी की मन्शा यह थी कि यह रिजव सोन के रूप म रखा जाय ग्रौर भारतवष में ही रखा जाय। पर भारत सचिव के सलाहकारों न सोन में एसे कागज को भी शरीक बनाया जिसका तबादला सोन से हो सकता था। भारत-सरकार के तत्कालीन ग्रथ सदस्य सर एडवड ला भी इसी मत के थ। हा लाड कजन स्वय ग्रथ की एसी नवाबी के विरुद्ध थ ग्रौर उन्होन भारत सचिव को लिखा था कि हमें कोई एसी कारवाई नहीं करनी चाहिए जिससे किसी प्रकार की गलतफहमी फैले या लोगो का विश्वास उठ जाय। पर भारत सचिव न उनकी एक न सुनी, ग्रौर सरकार को ग्राज्ञा दिया कि रुपयो की ढलाई से जो मुनाफा हो वह ग्राप नियमित रूप से हमारे पास भज दिया करें। इस प्रकार गोल्ड स्टण्डड रिजव की स्थापना लन्दन में हुई। ग्रौर उसमें सोन के ग्रलावा स्टलिंग कागज भी रहन लग।

१९१३ वाले शाही कमीशन न कई गवाहो म इस विषय पर प्रश्न किए ग्रौर यह जानना चाहा कि सोन स फौलर-कमेटी का सचमुच ग्रभिप्राय क्या था। एसे गवाहो में मि० मार्चेण्ट मि० कोल ग्रौर मि० रास के नाम उल्लेखनीय ह। मि० मार्चेण्ट स्वय फौलर-कमेटी के सदस्य रह चुके थ। उन्होन कहा कि ग्रब इस विषय में लोगो के विचार बदल

गए हैं और मैं स्वयं सोने की जगह स्टलिंग के व्यवहार का समर्थन करूँगा। पर जिस समय की यह बात है उस समय तो सोने से अभिप्राय वास्तविक सोने से ही था। मि० कैल बैंक ऑव इंग्लैंड के गवर्नर रह चुके थे। उन्होंने भी कहा कि प्रारम्भ में यही विचार था कि सारा-का-सारा रिजर्व सोने में रखा जाय। मि० रास बंगाल चेम्बर के प्रतिनिधि स्वरूप गवाही देने गए थे। उनका वक्तव्य यह था —

'फाउलर-कमेटी की रिपोर्ट की भाषा बहुत स्पष्ट है। उसकी सिफारिश थी कि यह रिजर्व पेपर करेंसी रिजर्व या सरकारी रोकड़ से बिलकुल अलग रखा जाय। इसका अर्थ यही हो सकता है कि रिजर्व इसी देश में रहनेवाला था। इंग्लैण्ड में रखने की मन्शा होती तो यह क्या लिखा जाता कि पेपर करेंसी रिजर्व और सरकारी रोकड़ में बिलकुल अलग ?' वहाँ तो यों ही यह रिजर्व अलग रहता। रिजर्व में खाली सोना रहे या नहीं इस सम्बन्ध में मैं कमेटी की इस सिफारिश को निर्णयात्मक समझता हूँ— एक्सचेंज का रुख गिरने की ओर हो तो सरकार अपने पास के सोने का कुछ हिस्सा विलायत भेज दे। मैं तो इसका अर्थ यही लगा सकता हूँ कि जब सरकार के पास इस देश में सोना हो तब वह उसे विलायत जाने दे। फिर कमेटी की दूसरी सिफारिश यह थी कि जब सरकार के पास रिजर्व में काफी सोना हो जाय और उसके खजाने में भी सोना हो तब वह भारतवर्ष में अपना टकसाल सोने में चुका सकती है।'

अब तो मनचाहा कर—सत्य और न्याय की हत्या कर—भारत-सचिव ने इस देश का सोना विलायत मँगाना और उसका मनमाना उपयोग करना शुरू कर दिया। इस धींगाधींगी ने भारत सरकार को भी हैरान कर दिया।

१९०७ में लॉर्ड इंचकेप की अध्यक्षता में एक कमेटी इस देश में रेलों की उन्नति के लिए रुपए जुटाने के प्रश्न पर विचार करने के लिए बैठी। इसकी सिफारिश हुई कि उस साल रुपया की ढलाई से मुनाफे[1] का दर

---

[1] दर असल यह कोई मुनाफा नहीं था। जैसे कागज के नोटों की पुश्ती के लिए करेंसी रिजर्व था वैसे ही चाँदी के नोटों की पुश्ती के

करोड़ रुपया रेलों के सुधार में लगा दिया जाय। पर भारत सचिव इससे भी दो कदम आगे बढ़ गए और उन्होंने निश्चय किया कि जब तक गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व ३० करोड़ रुपए का नहीं हो जाता तब तक हर साल मुनाफे की आधी रकम रेलों में लगती रहे। उनका विचार शायद यह था कि रिजर्व ३० करोड़ हो जाने पर सारी रकम उस काम में लगा दी जाय। भारतवर्ष में उनके इस निर्णय से बड़ा असंतोष फैला और इसका काफी विरोध किया गया।

भारत सरकार ने भी २४ जून १९०७ को तार द्वारा निवेदन किया कि रिजर्व का सोना अभी ऐसे काम में न लगाया जाय पर भारत सचिव ने उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और डेढ़ करोड़ से ऊपर रुपया रेलों में लगा ही दिया। साथ ही यह कहा कि जो निर्णय हो चुका है उसी के अनुसार आगे भी उपयोग होता रहेगा।

भारत सरकार ने एक्सचेंज के गिरने की आशंका प्रकट करते हुए कहा था कि रिजर्व को ऐसी परिस्थिति के लिए अक्षुण्ण रखा जाय। इसके उत्तर में भारत सचिव ने लिखा था कि डरने की कोई बात नहीं। व्यापार की वर्तमान अवस्था और अपने पास के साधनों को देखते हुए मैं इस आशंका को निर्मूल समझता हूं।

पर जो आसमान इतना साफ नजर आता था उसी में घनघोर घटा का उमड़ना दूर न लगी। १९०७ में यहां अनावृष्टि रही। कुछ महीने बाद अमेरिका में एक भीषण आर्थिक संकट उपस्थित हो गया। यहां से एक्सपोर्ट बहुत कम हुआ। मांग इस समय रुपए की नहीं स्टर्लिंग की थी क्योंकि कई कारणों से लोग यहां से रुपया विलायत भेज रहे थे। एक्सचेंज गिरने लगा फिर भी रुपए के बदले सरकार न सोना देने को तैयार थी न स्टर्लिंग। बहुत कुछ आन्दोलन के बाद वह स्टर्लिंग देने को तैयार हुई और भारत सचिव पर उलटी हुंडी बेचने लगी। एक्सचेंज तब

लिए गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व। रुपया अपनी नकली कीमत का कुछ हिस्सा अपने साथ लिए चलता था, पर बाकी कीमत की पूर्ति के लिए रिजर्व में सोना रखना जरूरी था।

तक गिर कर १५३/३२ पेंस हो गया था। अब वह ऊपर उठने लगा। सरकार फिर एक्सचेंज के लिए सोना देने को भी तैयार हो गई। सितम्बर १९०८ तक परिस्थिति सुधर चुकी थी इसलिए अब सरकार ने स्टर्लिंग बेचना बन्द कर दिया। इस संकट के कारण विलायत में गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व से ८,०५८,००० पौंड [१ पौंड = १५ रुपया] उठाना पड़ा। जिस मुद्रा प्रणाली की फौलर कमेटी ने सिफारिश की थी अगर वह लागू होती तो ज्योंही एक्सचेंज एक हद से नीचे गिरने लगता तो रिजर्व से सोना मिलने लगता और वे उसे विलायत भेजकर अपना देना चुकाने लगते। लिहाजा एक्सचेंज एक हद से नीचे न गिरता। पर जो मुद्रा प्रणाली यहां प्रचलित थी उसमें ऐसा कोई विधान नहीं था। सोना या स्टर्लिंग देना-न-देना सरकार की मर्जी की बात थी। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व के पैसे से विलायत में स्टर्लिंग कागज खरीद कर रिजर्व में रख दिए गए थे। जब स्टर्लिंग की मांग होने लगी तब भारत-सचिव ने कुछ समय तक उसको पूरा नहीं किया। बाजार की हालत खराब थी। भारत-सचिव को डर लगा कि वह परिमाण में कागज बेचने निकले तो मालूम नहीं दाम कहां तक गिर पड़ेगा।

१ अप्रैल १९०९ को भारत-सरकार ने फिर भारत सचिव को लिखा कि रुपया की ढलाई का मुनाफा पूरा का पूरा रिजर्व में रखा जाय और इसका काफी बड़ा हिस्सा सोने में रहे। उनके उस पत्र से कुछ अवतरण यहां देने लायक हैं —

'देश की उन्नति हम भी देखना चाहते हैं पर हमारा विश्वास है कि देश की भलाई की दृष्टि से उसकी मुद्रा प्रणाली की मजबूती इस उन्नति से कहीं ज्यादा जरूरी है।

जिस समय रिजर्व की सृष्टि हुई लार्ड कर्जन की सरकार की इच्छा थी कि यह सोने के रूप में रखा जाय। आपके पूर्ववर्ती भारत-सचिव ने यह न होने दिया और रिजर्व एक कागज या सिक्यूरिटीज में रखा गया जिनकी कीमत इधर काफी गिर गई है।

हम यह नहीं कहते कि सारा रिजर्व सोने के रूप में रखा जाय यद्यपि यह बता देना हमारा कर्तव्य है कि इस ढंग में इस बात का जोरा

मे भाग ह, पर हमारा यह प्रस्ताव जरूर ह कि रिजव का काफी बडा भाग वहा सोने में रखा जाय। यह सच ह कि १९०८ में रिजव के कागज या सिक्यूरिटीज बचन से जो नुकसान हुआ ह उससे अधिक ब्याज स भाम दनी हो चुकी ह। पर एसा सयोग हो सकता ह कि जिस समय हमारे लिए सिक्यूरिटीज बचना जरूरी हो उस समय साम्राज्य का हित उन्ह न बचन में हो। परिस्थिति इतनी गम्भीर न भी हो तो भी कागज या सिक्यूरिटीज में रखन से रिजव के स्वच्छन्द उपयोग म बाधा उपस्थित हो सकती ह। इस विषय पर यहा के सभी प्रमुख लोग सहमत ह कि जिस रूप में यह रिजव इस समय ह वह बहुत खतरनाक ह।

'अक्सर यह पूछा जाता ह कि जब दूसरे देश अपन अपन रिजव को—जो उनकी साख की भित्ति या आधार ह—सोन के रूप में रखत ह तब हम थोड से ब्याज क लिए अपन रिजव को सिक्यूरिटीज क रूप म रखकर इतनी बडी जोखिम क्यों उठात ह? इस समालोचना म बहुत कुछ सार ह और यह आपके ध्यान देन योग्य ह। हमारा खयाल ह कि अगर आप रिजव में अब और कागज या सिक्यूरिटीज रखना बन्द कर द तो इसका फल बहुत अच्छा होगा।

पर भारत सचिव को यह स्वीकार न हुआ और उन्होंन सरकार को उत्तर दते हुए लिखा कि सिक्यूरिटीज बचने की जिम्मेवारी हमारी ह, और चाह जसी भी परिस्थिति होगी हम लोग उसका सामना कर लेंगे। इस सम्बन्ध में मि० कोल की सम्मति उद्धत करनयोग्य ह —

१९०७—०८ में आर्थिक सकट का केन्द्र अमरीका न होकर लन्दन होता तो भारत सरकार के लिए स्टर्लिंग कागज या सिक्यूरिटीज बचना असम्भव हो जाता। असम्भव से अभिप्राय यह ह कि दाम जो मिलना चाहिए, नही मिलता—बाजार जो कुछ दता वही लेना पडता।'

भारत-सचिव के निणय क आग भारत सरकार न सिर झुकाया पर इतना कह बिना उससे न रहा गया कि आपका यह निणय हम खद के साथ स्वीकार करत ह। भारत-सचिव न केवल १ ००० ००० पौंड सोन क रूप में रखना मंजूर किया था।

१९०९ में गोल्ड स्टण्डर्ड रिजव की एक शाखा इस देश म खोली

गई जिसमें छः करोड़ रुपए रखने की व्यवस्था की गई। यह कुछ ऊट पटांग-सी बात थी कि जिसका नाम स्वर्णनिधि हो उसमें रुपए रखे जाय। पर भारत सचिव यहां भी एक चाल चल रहे थे। करेन्सी रिजर्व में यह कानूनी व्यवस्था थी कि लन्दन में एक हद से ज्यादा रकम सोने में ही रखी जा सकती थी। मान लीजिए कि रुपयों की मांग हुई और लन्दन में भारत-सचिव को सोना मिला। अगर ये रुपए करेन्सी रिजर्व से लिए गए तो वह सोना उसी रिजर्व की सम्पत्ति रहे और भारत सचिव को उस सोने के साथ मनमाना करने का अधिकार नहीं था। पर गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व में कानून का कोई ऐसा नियन्त्रण नहीं था भारत-सचिव जो चाहते कर सकते थे। इसलिए इस रिजर्व की यह शाखा उनके सुभीते के लिए खोली गई। छः करोड़ रुपए तक इस शाखा में रख दिए जा सकते थे और इनके बदले विलायत में जो सोना मिलता उसका भारत-सचिव जिस प्रकार चाहते उपयोग कर सकते थे।

३१ मार्च १९१३ को गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व इस रूप में था —

	पौंड
सिक्यूरिटीज या कागज (बाजार दर से)	१४ ९४५ ६६९
रकम जो थोड़े समय के लिए उधार दी गई थी	१,००५ ६६४
	१५ ९५१ ३३३
बैंक ऑफ इंगलैंड में रखा हुआ सोना	१ ६२० ०००
	१७,५७१ ३३३
भारतीय शाखा में छः करोड़ रुपए १६ पेंस की दर से	४,००० ०००
	२१ ५७१ ३३३ पौंड

उस समय गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व-सम्बन्धी नीति यह थी कि जब यह २५ ००० ००० पौंड हो जाय तब इस विषय पर फिर से विचार हो कि रुपयों की ढलाई का मुनाफा और सूद से होनेवाली आमदनी सब की सब इस रिजर्व में जमा की जाय या नहीं।

३१ मार्च १९१३ को पेपर करेन्सी रिजर्व का यह हाल था कि चलन में कुल नोट ६८ ६७ करोड़ रुपए के थे। इनकी पूर्ति के लिए रिजर्व

में ये चीजें थी —

भारतवर्ष में रुपए	१६.४५ करोड़ रुपए
" सोना	२६.३७ " "
लन्दन में सोना	६.१५ " "
लन्दन में सिक्यूरिटीज	४.०० "
भारतवर्ष में	१०.०० "
	६८.९७ करोड़ रुपए

१८६२ में चलन में कुल नोट ३.६९ करोड़ थे। १८९० में यह तादाद १५.७७ करोड़ हो चली थी। नोटों के प्रचार में विशेष वृद्धि चांदी की टकसाल बन्द हो जाने के बाद हुई। इधर उनकी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया और उनसे सम्बन्ध रखने वाले विधान में कई संशोधन हुए।

१८७४ से पहले रिजर्व में कुछ सोना रहता था पर चांदी के मुकाबले जब सोना महंगा हो चला तब उसका रिजर्व में आना बन्द हो गया। १८९३ में सोने और रुपए के बीच की दर बांधी गई और सरकार सोने के बदले रुपए देने को तैयार हुई। पर चूंकि सोने की कीमत बाजार में ज्यादा थी कोई रुपए लेने के लिए सरकार के पास अपना सोना न ले जाता था। १८९८ में जब एक्सचेंज १६ पेंस हो गया तब लोग सरकार को सोना देकर उससे रुपए लेने लगे। करंसी रिजर्व में इस प्रकार सोना इकट्ठा होने लगा। १९०० के आरम्भ में प्रायः ७॥ करोड़ रुपए का सोना वहां इकट्ठा हो चुका था।

सोने को चलन में लाने के लिए कुछ प्रयत्न किया गया पर वह विशेष सफल न हो सका। उस समय भारतवर्ष के कुछ हिस्सों में अकाल पड़ा हुआ था और आर्थिक अवस्था सोने के चलन के अनुकूल नहीं थी। फिर जब सोना चलन से लौट कर सरकारी खजाने में आने लगा तब भारतवर्ष में उसके चलन के विरोधी इसका यह अर्थ लगाने लगे कि यहां के लोग गरीब होने के कारण सोने का व्यवहार नहीं कर सकते, उनके लिए रुपया ही विशेष उपयुक्त है, इत्यादि। वास्तव में उस साल

यहां की अवस्था सोने के चलन के प्रतिकूल थी। इसके बाद फिर कभी सरकार की ओर से सोने को चलन में लाने के लिए कोई खास उद्योग नहीं किया गया।

प्रारम्भ में करेंसी रिजर्व का सारा सोना इसी देश में रहता था। १८९८ में अस्थायी रूप से कुछ सोना लन्दन में रखा गया। पर यह व्यवस्था कुछ ही समय बाद स्थायी कर दी गई। कारण यह बताया गया कि वहां चांदी खरीदने के लिए सोना रखना जरूरी था। बाद में यह विधान बना कि करेंसी रिजर्व का सोना सरकार लन्दन में या इस देश में जहां चाहे रख सकती थी। भारत सचिव इस रिजर्व का भी काफी सोना लन्दन में रखने लगे।

१९०५ के विधानद्वारा सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह करेंसी रिजर्व का एक निश्चित भाग स्टर्लिंग सिक्युरिटीज में रख सकती [illegible]। पहले इसकी हद दो करोड़ रुपए थी। १९११ में वह चार करोड़ कर दी गई। सारा हिस्सा जो सिक्युरिटीज में यहां और लन्दन में रखा जा सकता था १४ करोड़ था।

गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व और करेंसी रिजर्व के अलावा भी सरकार के हाथ में कुछ रुपए रहते थे, जिन्हें सरकारी रोकड़ कहते थे। यह रोकड़ भारतवर्ष और लन्दन दोनों जगह रखी जाती थी।

व्यवस्था यह थी कि लन्दन में कम-से-कम ४ ००० ००० पौंड रहें और भारतवर्ष में कम से-कम ८ ००० ००० पौंड। नए साल के प्रारम्भ में भारतवर्ष में प्राय १२ ०००,००० पौंड रखना पड़ता था अथवा सब मिला कर १६ ०००,००० पौंड। वास्तव में कब कहां कितनी रोकड़ थी यह नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा —

३१ मार्च	लन्दन में पौंड	भारतवर्ष में पौंड	कुल जोड़ पौंड
१९०८	४ ६०३ ३०६	१२,८५१ ४१३	१७ ३५८,६५६
१९०९	७ ६८३ ८६८	१० ३२५ ४८३	१८ २१६,३८१
१९१०	१२ ७०९ ०९४	१२ ३६५ ४२८	२५ ०७४,५२२
१९११	१६,६९६ ६६०	१३ ५६६ ०२२	३० २६३ ९१२
१९१२	१८ ३६०,०१३	१२,३०६,६८६	३०,६६६,७०२

स्पष्ट है कि रोकड बाकी जितनी होनी चाहिए थी उससे कहीं ज्यादा थी और इसका कारण यह था कि लन्दन का हिस्सा बढते-बढते प्राय तिगुना होने लगा था। जहां ४ ००० ००० पौंड पर्याप्त था वहां १८ ०००, ००० पौंड से भी अधिक जमा रहता था।

आखिर इतना रुपया आता कहां से था ? इसका उत्तर है—बजट की बचत में। हर साल व्यय से आय अधिक होती और जो बचत होती वह लन्दन मगा ली जाती।

१८९८-९९ से बचत होना शुरू हुआ था और प्रथम महासमर के आरम्भ तक होता ही गया। पहले दस वर्षों में जो बचत हुई वह ३७½ करोड रुपए थी। १९१० और १९१४ के बीच २० करोड की और बचत रही। यह भारत-सरकार के बजट की बात है। प्रान्तीय सरकारों की बचत इसमें शामिल नहीं है।

श्रीयुत गोखले के बजट-सम्बन्धी भाषणों में सरकार की इसलिए काफी निन्दा मिलती है कि वह हर साल टक्स के रूप में जरूरत से ज्यादा लोगों से वसूल करती और अन्धाधुन्ध खर्च करने के बाद जो कुछ बच रहता उसे शिक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी कामों में न लगा कर और कामों में लगा देती। बजट बनाते समय आय का तखमीना जानबूझ कर कम किया जाता। खर्च पर किसी प्रकार का नियन्त्रण था ही नहीं। यूरोपियन कर्मचारियों की सख्या बढती ही जाती थी पर यह सब होने पर भी जब बचत होती और सरकार से उसका कुछ हिस्सा शिक्षा प्रचार या स्वास्थ्य सुधार जैसे कामों के लिए मांगा जाता तब उत्तर मिलता कि इसमें से कुछ भी मिलना असम्भव है।

श्रीयुत गोखले ने अपने एक भाषण में दिखाया था कि १८९८-९९ और १९०८-०९ के बीच भारत-सरकार का खर्च—समान की तुलना समान से करने पर—बास करोड रुपए बढ गया था। इस बीच में कुछ टक्स माफ कर दिए गए ये सही पर उसका असली कारण यह था कि एक्सचेंज ऊँची होने के कारण विलायत जानेवाली रकम में काफी बचत होने लगी थी। ५ मार्च १९१० को श्रीयुत गोखले का बडी व्यवस्थापिका सभा में एक भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने कहा —

प्राय छ साल से मैं लगातार कोशिश करता आ रहा हूँ कि सरकार को जो बचत होती है वह प्रांतीय सरकारों को सफाई जैसे काम पर खर्च करने के लिए दे दी जाय। इसी साल की बात है कि तत्कालीन प्रथ सदस्य सर एडवर्ड बेकर ने म्यूनिसिपलिटियों द्वारा सफाई पर खर्च होने के लिए करीब पचास लाख रुपए दिए थे। मेरी सारी अपीलों का कोई नतीजा निकला तो यही। उसका छोड़ दें तो कहना होगा कि मेरा प्रयत्न निष्फल रहा।

सरकार का कहना था कि भारतवर्ष जैसे देश में आय-व्यय का तख्मीना बहुत कठिन काम है—हमें बड़ी सावधानी से काम लेना पड़ता है इस सावधानी के कारण अगर बचत रह जाती है तो हम इसके लिए अपराधी नहीं ठहराए जा सकते पर उस बचत का उपयोग सबसे पहले कर्ज घटाने के लिए होना मुनासिब है। कर्ज लेन-देन का काम विलायत में पड़ता, इसलिए यह रकम भी वहीं भेज दी जाती। अगर कुछ समय के लिए इसकी आवश्यकता नहीं भी हुई तो कहा जाता कि इसे व्यापारियों को उधार देकर कुछ ब्याज उपजाया जा सकेगा।

लन्दन में भारत-सचिव का रुपया बैंक ऑव इंग्लैंड में जमा रहता था। वह इस बैंक में कम से कम पांच लाख पौंड बराबर रखने को बाध्य थे। असलियत में वह रकम इससे ज्यादा थी। इस रुपए पर वह कुछ भी ब्याज पाने के हकदार नहीं थे। पर यह बैंक इंडिया ऑफिस (भारत-सचिव का विभाग) का रुपया पैसा जमा रखने के अलावा भी उसका कुछ काम कर दिया करती—इसके लिए इसे जो कमीशन या पुरस्कार मिलता वह साल में ६६ ००० पौंड होता था। सब मिला कर इस बैंक को इंडिया ऑफिस से साल में प्राय ८६ ००० पौंड अर्थात् १२ ६०,००० रुपए का लाभ था। चेम्बरलेन-कमीशन के सामने इंडिया ऑफिस की ओर से आने वाले गवाहों ने भी स्वीकार किया कि यह रकम बहुत बड़ी थी और भारतवर्ष को यह सौदा बहुत महंगा पड़ रहा था। पर उनका कहना था कि इंडिया ऑफिस लाचार है। कानूनन वह दूसरी बैंक से अपना काम करा नहीं सकता और जब बैंक ऑव इंग्लैण्ड से अनुनय-विनय करता है कि कमीशन घटाइए तब बैंक साफ इनकार कर देती है। वास्तव में बैंक ऑव्

इग्लण्ड इडिया आफिस की ववसी का नाजायज फायदा उठा रही थी।

इडिया ऑफिस लन्दन में रुपया उधार लेने का काम करता था। कहा जाता ह कि इस विषय में वह ईस्ट इडिया कम्पनी की बताई हुई राह पर चल रहा था।

इडिया आफिस की ओर से एक खास दलाल लेन देन के इस काम को देखता था। एसे लोगो की एक लिस्ट रखी जाती जिन्हे रुपया उधार देने में कोई जोखिम नहीं थी। अगर कोई व्यक्ति या फर्म अपना नाम इस लिस्ट पर चढाना चाहता तो उसे दरख्वास्त करनी पडती। यह दरख्वास्त इडिया आफिस की फाइनेंस कमेटी की सिफारिश हो जाने पर मजूरी के लिए भारत सचिव के पास जाती। जिनकी साख ऊची होती वे ही इस लिस्ट पर आ सकते थे।

जिस फाइनेंस कमेटी का यहा जिक्र किया गया ह उसके चेयरमन या अध्यक्ष इधर कुछ वर्षों से लन्दन के लाड इचकेप या सर फलिक्स शुस्टर जसे बड व्यापारी होते आ रहे थे। लेन-देन के काम में इस चेयरमन का बहुत बडा हाथ रहता और भारत सचिव प्राय इन्ही के कहने के अनुसार चलते थ।

कज सिक्यूरिटीज पर लिया जाता था पर कुछ खास बकों को बिना जमानत के ही दे दिया जाता। जब आप इग्लण्ड की ओर से गवाही देने वाले मि० कोल न चेम्बरलेन कमीशन से कहा था कि उनके यहा यह प्रथा नहीं थी और बडी-से-बडी बक को भी सिक्यूरिटीज देने पर ही रुपया उधार मिल सकता था। कर्ज लेनेवालो में दो बडी बकें एसी थीं जिनसे लॉर्ड इचकेप और सर फलिक्स शुस्टर स्वयं सम्बद्ध थ। उस समय ऐसे समालोचको की कमी नहीं थी जिन्होने इन दोनों पर पक्षपात का दोषारोपण करते हुए यह कहा कि इनका एक हाथ कज देता था और दूसरा लेता था। पर लॉर्ड इंचकेप ने अपनी और सर फलिक्स शुस्टर की सफाई में कहा कि उन्होंने उन बैंकों के साथ जरा भी रियायत नहीं की थी।

इण्डिया ऑफिस के दलाल मि० होरेस स्कॉट थे। उनसे पहले उनके पिता इस पद पर रह चुके थे। ब्याज से जो आमदनी होती उसपर पाच प्रतिशत के हिसाब से मि० स्कॉट को दलाली मिलती थी। १६१०-११

में उनकी दलाली १६ ००० पौंड अर्थात् २ ४० ००० रुपए हुई थी। इस पर टिप्पणी करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री केन्स ने लिखा था— जब पहले पहल यह मालूम हुआ कि बड़े लाट को छोड़ भारत सरकार की ओर से सबसे अधिक वेतन या पुरस्कार पानेवाला इण्डिया आफिस का यह दलाल है तब लोग आश्चर्य चकित हो गए। मजा यह कि इस दलाल को अपना पूरा समय इण्डिया आफिस के काम के लिए नहीं लगाना पड़ता उसका अपना भी व्यवसाय है, और वह उसे भी देखता भालता है।

आन्दोलन उठने पर मि० स्कार की दलाली घटा दी गई। फिर भी इससे उनकी आय आठ हजार पौंड अर्थात् १ २० ००० रुपए के लगभग थी। भारत सरकार की ओर से स्टाम्प (कागज) की खरीद बिक्री करने के लिए उन्हें १ ४०० पौंड अलग मिलता था। समालोचकों का कहना था—और बहुत ठीक कहना था कि घटा देने पर भी इण्डिया आफिस के दलाल की दलाली बहुत ज्यादा थी। लेन-देन करोड़ों का होता था और ब्याज की दर बाजार की हालत पर निर्भर करती थी। दलाल की कार्य कुशलता से आमदनी में इतना ज्यादा फर्क नहीं पड़ सकता था कि उसे इस पैमाने पर पुरस्कार दिया जाय। पर इण्डिया आफिस ऐसी सलाह पर कब ध्यान देनेवाला था?

भारतवर्ष का जो रुपया लन्दन के व्यापारियों को इस प्रकार उधार दिया जाता वह कभी कभी २७ करोड़ के करीब पहुँच जाता था। ब्याज की दर कभी कभी इतनी नीची होती कि बैंक आफ इंग्लैण्ड भी हैरान हो जाती। इस बात को सब स्वीकार करते थे कि लन्दन का सराफा और लन्दन का व्यापार दोनों को इण्डिया ऑफिस की इस महाजनी से बहुत लाभ था।

पर भारतवर्ष का रुपया भारतवर्ष के काम न आ सकता था। यहाँ सरकार की नीति इतनी संकीर्ण थी कि बड़ी-से-बड़ी बैंक के लिए भी उधार लेना आसान नहीं था। १८९६ और १९०६ के बीच कुल छः बार बैंकों ने सरकार से कर्ज लिए—प्रत्येक बार २० से ४० लाख रुपए के बीच। १९०६ और १९१३ के बीच लेन-देन का काम हुआ ही नहीं। व्यापारियों को यहाँ प्रायः ऊँचे ब्याज पर रुपया मिलता। ▪ प्रसिद्ध

यहा के लिए साधारण दर थी। जब कभी लोग सरकार से कहते कि रुपया सस्ता करके वाणिज्य व्यापार और उद्योग धंधों की उन्नति में सहायता पहुँचाइए तब उन्हें उत्तर मिलता कि यह सहायता पहुँचाना हमारा काम नही। बाजार को अपने पैरो पर खड़ा होना चाहिए और भारतीय पूंजी ऐसे कामो में लग सके इसका प्रबन्ध करना चाहिए।' भारतवर्ष का धन लन्दन के लिए था भारतवर्ष के लिए नही।

भारत सचिव भारत सरकार पर जो हुण्डी किया करते वह कौंसिल बिल कहलाती थी। भारतवर्ष में आयात (इम्पोर्ट) की अपेक्षा यहा से निर्यात (एक्सपोर्ट) अधिक होने के कारण स्टर्लिंग की अपेक्षा रुपए की माग प्राय अधिक रहती थी। रुपए चाहनेवाले लोग विलायत में भारत सचिव को सोना या स्टर्लिंग देकर उनसे भारत सरकार के नाम हुण्डी ले सकते थे और हुंडी भनाकर उनके रुपए कर सकते थे। इसके लिए कायदा यह था कि रुपए चाहनेवालो का टेंडर देना पडता—अर्थात यह बताना पड़ता कि वे किस दर से उसे खरीदने को तयार हैं। फिर भारत सरकार की ओर से यह सूचित किया जाता कि किसकी दर मजूर हुई है और किसको कितने की हुण्डी मिलेगी। तार-द्वारा जो हुंडी की जाती उसके लिए भारत सचिव १५ ३/१६ पेंस से नीची रेट को किसी भी हालत में मजूर करने को तयार नही थे।

उस समय रुपए प्राप्त करने के दो तरीके थे एक तो यह कि भारत सरकार का यहा माल लिया जाय और एक्सचेंज-दर से बदले में रुपए लिए जाय दूसरा यह कि भारत-सचिव से हुंडी खरीदकर उसके रुपए कर लिए जांय।

विलायत से या दूसरे देश से सोना लाने में कुछ खर्च जरूरी था। विलायत से यह खर्च (जहाज का भाड़ा ब्याज की हानि और बीमा) १६ पेंस (सोना) पीछे ½ पेनी पडता था—अर्थात् सोना लानेवाले को एक रुपए की कीमत १६½ पेंस पडती थी। ऐसी हालत में उसे अगर हुंडी द्वारा एक रुपया १६ १/१६ पेंस में ही मिल जाता तो वह क्यों सोना खरीदने और यहा भेजने वाला था? भारत सचिव की नीति बराबर यह रहती थी कि कम-से-कम सोना भारतवर्ष आय। इसलिए वह इस

हुण्डी की दर प्राय इतनी नीची रखते थे कि लोग रुपए के लिए सोने के बजाय इसी हुण्डी का उपयोग करें। उन्हें विलायत में अपने काम के लिए रुपए पैसे की जरूरत हो या न हो वह हुण्डी बेचते ही रहते थे बल्कि उन्होंने यह एलान कर रखा था कि १६ ½ पैसे की दर से तो भाई जितने की चाहें, हुण्डी ले सकता है। भारत सचिव सोने को लन्दन से यहां आना रोक कर ही सन्तुष्ट नहीं थे। और दशा में भी जब सोना यहां आने लगता तब वह लेनेवाले को ऐसी दर से हुण्डी बेच देते कि उसके लिए सोना लन्दन भेज देना और हुण्डी भुनाकर यहां रुपए कर लेना अधिक लाभदायक हो जाता।

भारत सचिव की ओर से कहा जाता कि आखिर सोने को एक न एक दिन लन्दन आना ही है—रुपयों की खातिर चांदी खरीदने के लिए या एक्सचेंज को गिरने से बचाने के लिए—फिर क्यों उसके आने जाने में पैसे का अपव्यय होने दिया जाय? बेहतर यह है कि सोना लंदन में ही बना रहे और उसे उधार देकर भारत सचिव कुछ ब्याज भी उपजाते रहें। इसका जवाब यह था—

(१) रुपयों के लिए चांदी खरीदने की जरूरत इसलिए पड़ती थी कि हमारे शासक हमें वह सच्चा गोल्ड स्टैण्डर्ड (सोने का मान) देने को तैयार नहीं थे जिसकी सिफारिश फौलर-कमेटी ने की थी और जिसे देना स्वयं भारत-सचिव ने स्वीकार कर लिया था। अगर चलन में सोने के सिक्के होते तो चांदी के इन सिक्कों की न ऐसी आवश्यकता होती, न ऐसी बहुतायत।

(२) एक्सचेंज का गिरना बहुत दूर का भय या सम्भावना थी। भारतवर्ष में इम्पोर्ट से एक्सपोर्ट ज्यादा होने के कारण स्टर्लिंग से रुपए की मांग ज्यादा रहती है। कभी किसी साल ऐसा संयोग हो जाता है कि एक्सपोर्ट से इम्पोर्ट बढ़ जाता है और स्टर्लिंग की मांग बढ़ जाने के कारण एक्सचेंज की गंगा उलटी बहने लगती है। पर ऐसे अवसर बहुत कम हुए हैं। अधिकारियों को एक्सचेंज के गिरने की फिक्र तो इतनी थी कि उसको रोकने के लिए लाल-व पास लन्दन में सोना इकट्ठा करते जाते थे? पर महासमरजैसी परिस्थिति की उन्हें कोई भी चिन्ता नहीं

थी, जिसमें न सोना मिल सकता था न सिक्यूरिटीज या कागज ही बचे जा सकते थे।

(३) ब्याज तो भारतवर्ष में भी उपजाया जा सकता था, बल्कि यहां इसकी गुंजाइश विलायत से ज्यादा थी। पर जहाँ मुद्रा प्रणाली की वास्तविक भित्ति या आधार का प्रश्न हो वहां तो सब से पहले यह देखना चाहिए कि वह सुरक्षित किस प्रकार रह सकेगी। उसके सुरक्षित रहने से ही हम सुरक्षित बन रहेंगे। थोड़े से ब्याज के लिए इतनी बड़ी जोखिम उठाना कहां की बुद्धिमत्ता थी? पर लन्दन में सोना इंग्लैंड की भलाई के खयाल से रखा जा रहा था—भारतवर्ष को ब्याज के रूप में कुछ लाभ कराने के उद्देश से नहीं।

लन्दन में चांदी खरीदने का कारण लन्दन का पक्षपात था। वहां का बाजार बहुत ही छोटा है। चार दलालों के गुट या टोली को लन्दन में चांदी का बाजार समझना चाहिए। भारतवर्ष में लाखों की मांग थी कि चांदी के लिए टेंडर कराए जायं और उनपर विचार होने के बाद चांदी बम्बई में खरीदी जाय। सर नापुर्जी भरोचा के कथनानुसार यह नगर सम्भवतः संसार में चांदी का सबसे बड़ा बाजार था। पर इंडिया आफिस को लन्दन से बाहर चांदी खरीदना मंजूर न था। सर नापुर्जी चेम्बरलेन कमीशन के मेम्बर थे। उन्होंने एक गवाह की जिरह करते हुए कहा था कि १९०४-०५ में कंट्रोलर-जनरल से मुझे चांदी का एक बड़ा आर्डर मिला पर भारत सचिव ने माल के लिए ऐसी खरीदगी की मनाही कर दी। पारसाल लन्दन में जिस भाव चांदी खरीदी गई उससे बम्बई में दो पैसे सस्ता खरीदी जा सकती थी। तमाशा यह था कि लन्दन में जो चांदी खरीदी गई थी वह भारतीय व्यापारियों की थी। पर भारतवासी भारत-सरकार को भारतवर्ष में अपनी चांदी न बेच पाते थे।

एक बार प्रायः ९ करोड़ रुपए की चांदी लन्दन में समुयल मौंटग्यू कम्पनी (दलाल) की मार्फत खरीदी गई। मि० मौंटग्यू—जो बाद में भारत-सचिव हुए थे, उस समय इंडिया आफिस में अन्डर सेक्रेटरी थे, और उसी कुल-परिवार के थे जो उस कम्पनी का मालिक था। उनके विरोधियों ने इस चीज को लेकर हाउस आफ् कॉमन्स में काफी हो-हल्ला

मचाया और कितनी ही ऐसी बातों पर प्रकाश डाला जिनसे पक्षपात का सन्देह हुए बिना न रह सकता था।

सोने का उत्पादन इधर काफी बढ़ चला था और यह वृद्धि इस प्रकार हुई थी —

	टन
१८९०	१७७
१८९५	२९०
१९००	३७७
१९०५	५७७
१९१०	६७४

सोने में दाम भी बढ़ चले थे और बढ़ते ही जा रहे थे। भारतवर्ष में भी दाम ऊँचे हो रहे थे। ऐसी अवस्था में जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है—लोग चाँदी को स्वयंसिद्ध मुद्रा बनाने के पक्षपाती न रह गए। चेम्बरलेन-कमीशन के सामने सिर्फ एक गवाह ने यह माँग पेश की थी कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौता करके इस देश में चाँदी को उसकी पुरानी जगह फिर दे दी जाय।

सोने में दामों की अपेक्षा रुपए में दाम ज्यादा बढ़े थे और कुछ विशेषज्ञों का—खासकर श्री गोखले का—मत यह था कि रुपए चलन में आवश्यकता से अधिक थे। उनका कहना था कि 'सोने के सिक्के, आवश्यकता न रहने पर, निकल जाते हैं (जैसे निर्यात के रूप में), पर रुपए निकल नहीं सकते। उन्हें गलाने में लाभ नहीं। भुगतान के लिए उन्हें विदेश भेजना संभव नहीं। या तो वे लौट कर बैंकों में या सरकारी खजाने में आ जायेंगे या चलन में बने रहेंगे। पर इस देश में बैंक-व्यवसाय की अभी यथेष्ट उन्नति नहीं हुई है, इसलिए रुपए जल्दी लौटते नहीं, लोगों के ही पास बने रहते हैं और दामों पर अपना असर डालते रहते हैं। इस विषय का अनुसंधान करने के लिए १९१० में एक छोटी सी कमेटी बनी थी जिसके अध्यक्ष मि० के० एल० दत्त थे। इसकी राय यह ठहरी कि रुपयों की वृद्धि आवश्यकता के अनुसार ही हुई थी और उनकी बाढ़ ऐसी बहुतायत न थी। हाँ, बैंकों से उधार मिलने में अब

बडी सहूलियत हो चली था, और इसका असर दामो पर बेशक पडा था।

चेम्बरलेन कमीशन की सिफारिशो का जिक्र करने से पहले परिस्थिति का सिंहावलोकन कर लेना आवश्यक है—

(१) इस समय सावरेन (गिन्नी) और रुपया दोनों ही चलण में थ, और लोग दोनो को ही लेने-देने को बाध्य थे।

(२) सरकार रुपए के बदले सोना देने को कानूनन बाध्य नही थी पर एक हद तक वह सोना देने को तयार रहती थी।

(३) सरकार सावरेन के बदले १६ पेंस की दर से रुपया देने को बाध्य थी, पर धातु के रूप में सोने के बदले नही।

(४) भारत-सचिव १६१/८ पेंस की दर से चाहे जितनी की हुण्डी भारत-सरकार के नाम बेचने को तयार रहते थे। भारत-सरकार भी भारत-सचिव के नाम उलटी हुडी बेचना स्वीकार कर चुकी थी पर १५२९/३२ पेंस से नीची दर स नहीं। एसी हालत में एक्सचेंज न तो १६१/८ पेंस से ऊपर जा सकता था, न १५२९/३२ पेंस से नीचे।

(५) चलण म विशेषता रुपया की थी। करेंसी रिजव और सरकार के हाथ के रुपयो को छोड बाकी रुपयो का चलन १९१२ में २०० करोड कूता गया था।

सोने के सिक्को का प्रचार बढ रहा था। ३१ मार्च १९१३ को समाप्त होनेवाले १२ वर्षों में प्राय ९० करोड के सावरेन सावजनिक चलण में गए। इन बारह वर्षों में चादी के रुपए भी प्राय ९० करोड ही ढले। सोने के चलण की रफ्तार १९०६ के बाद तेजी से बढने लगी थी। ३१ मार्च १९०६ और ३१ मार्च १९१३ के बीच ४५ करोड के सॉवरेन सावजनिक चलण में गए। यह तो नही कहा जा सकता कि सब के-सब सॉवरेन चलण में मौजूद थे पर चेम्बरलेन-कमीशन की रिपोर्ट ने भी यह बात स्वीकार की थी कि लेन-देन के काम में सॉवरेन अधिकाधिक आ रहा था—खास कर बम्बई, संयुक्त प्रान्त, पजाब और मद्रास के कुछ हिस्सों में।

सोने का यह प्रचार या उपयोग हमारे शासको की अनिच्छा होते हुए भी होने लगा था। हमारे शासन-सूत्रधर की तो बराबर यह चेष्टा

रहती थी कि सोना लन्दन से भारतवर्ष आने न पावे । पर फिर भी कुछ न कुछ सोना आता ही रहता था और करसी के रूप में सावरेन के उपयोग का बढ़ना कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं था ।

जिस विशुद्ध गोल्ड स्टण्डर्ड या सुवर्ण-मान की फौलर कमेटी ने सिफारिश की थी वह हमें न दिया गया । उसकी जगह दिया गया गोल्ड एक्सचेंज स्टैंडर्ड जिसकी सिफारिश मि० लिण्डसे ने की थी और जो उस समय अस्वीकृत कर दिया गया था । इस स्टैण्डर्ड के अनुसार मूल्य का मान या मापक सोना ही था—एक रुपया वास्तव में ७.५३३४४ ग्रेन सोने का प्रतीक या प्रतिनिधि था—पर हमारा अपना कोई सोने का सिक्का नहीं था और रुपए का मूल्य सरकारी व्यवस्था पर निर्भर करता था । सोने का रिजर्व यहाँ से सात समुद्र पार विलायत में रख दिया गया था और भारत-सचिव अपनी नीति ऐसी रखते थे कि कम से कम सोना भारतवर्ष आने पावे ।

भारत-सरकार का अपना मत कई बातों में भारत सचिव से भिन्न था पर वह परतन्त्र होने के कारण लाचार थी । भारत-सचिव लन्दन के पूंजीपतियों के हाथ की कठपुतली थे । उन्हें वही करना पड़ता था जो इंग्लैण्ड के हित के अनुकूल था जिससे इंग्लैण्ड का स्वार्थ सिद्ध होता था ।

१७ अप्रैल १९१३ को एक रायल कमीशन भारतीय मुद्रा प्रणाली के हर पहलू पर विचार करने के लिए नियुक्त हुआ । इसके अध्यक्ष थे मि० आस्टेन चेम्बरलेन जो बाद में भारत-सचिव और परराष्ट्रसचिव हुए थे । कमीशन के दूसरे मेम्बरों में लार्ड फेबर सर जायुर्जो मराया, सर अर्नेस्ट केबल और अध्यापक केन्स थे । इसके सेक्रेटरी थे सर बसिल ब्लैकेट जो बाद में भारत के अर्थ सदस्य हुए ।

पिछली कमेटियों की तरह इस कमीशन की भी सारी कार्रवाई लन्दन में ही हुई । इसकी रिपोर्ट २४ फरवरी १९१४ को ब्रिटिश सरकार के पास भेजी गई । इसके एक मेम्बर सर जेम्स बेग्बी ने सोने के प्रचार के सम्बन्ध में औरों से अपना मतभेद प्रकट किया था । रिपोर्ट में अध्यापक (वर्तमान लॉर्ड) केन्स का रिजर्व बैंक जैसी संस्था पर एक नोट था ।

कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह स्वीकार किया कि जितनी ही बातों

में वस्तुस्थिति फौलर कमेटी द्वारा स्वीकृत स्कीम से भिन्न थी। यहां की मुद्रा प्रणाली का आधार था तो मि० लिण्डस का प्रस्ताव जो कमेटी द्वारा अस्वीकृत हो चुका था पर कमेटी के बताए हुए मार्ग का अवलंबन न करने के लिए कमीशन ने अधिकारियों की किसी प्रकार की निन्दा नहीं की बल्कि उसका कहना था कि जो कुछ हुआ था अच्छा ही हुआ था।

कमीशन की सिफारिशों में कुछ खास बातें ये थी —

(१) यह निश्चित हो जाना चाहिए कि भारतीय मुद्रा प्रणाली का लक्ष्य क्या है। १८९८ की कमेटी की राय थी कि इस देश में सोने के मान की सफलता के लिए सोने का सिक्का आवश्यक है। पर पिछले १४ वर्षों के इतिहास से इस धारणा की पुष्टि नहीं होती।

(२) चलन में सोने के उपयोग को प्रोत्साहन देना भारतवर्ष के लिए हितकर न होगा।

(३) सोने के सिक्के की यहां ढलाई की कोई आवश्यकता नहीं। पर भारतीय जनता सचमुच इसे चाहती है और भारत सरकार इसका खर्च सहन को तैयार है तो सिद्धांततः कोई आपत्ति नहीं हो सकती। हां जो सिक्का ढाला जाय वह सावरेन होना चाहिए।

(४) एक्सचेंज की पुस्ती के लिए रिजर्व में काफी सोना और स्टर्लिंग रहना चाहिए।

(५) गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व की अभी कोई हद नहीं बांधी जा सकती।

(६) रुपया की ढलाई से जो मुनाफा हो वह पूरा का पूरा इसी रिजर्व में जमा किया जाय।

(७) इस रिजर्व में इस समय जितना सोना रखा जाता है उससे अधिक रखने की जरूरत है।

(८) गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व लन्दन में ही रहना चाहिए।

(९) सरकार को साफ तौर से यह जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लेनी चाहिए कि जब कभी स्टर्लिंग की भारतवर्ष में मांग होगी तब वह भारत सचिव के नाम १५$\frac{3}{32}$ पेंस की दर से हुंडी बेचने को तैयार रहेगी।

(१०) भारत-सरकार के हाथ में जब कभी बचत का रुपया हो तब उसे प्रेसिडेंसी बैंकों को उधार देने का नियम सा कर लेना चाहिए। किन

शर्तों पर रुपया उधार दिया जाय यह निश्चित हो जाना चाहिए ।

(११) इस समय हम किसी स्टेट या सेण्ट्रल (केन्द्रीय) बैंक की स्थापना के पक्ष या विपक्ष में कुछ भी नहीं कह सकते पर इतना हम अवश्य कहेंगे कि यह विषय महत्त्वपूर्ण है और इस पर विशेषज्ञों की एक छोटी-सी कमेटी द्वारा विचार होने की आवश्यकता है ।

इण्डिया ऑफिस की फाइनेन्स कमेटी के दो चेयरमेन और एक मेम्बर ऐसी बैंकों से सम्बन्ध रख चुके थे जिनका इण्डिया ऑफिस से लेन-देन का सरोकार रहता था । यह बात समालोचकों द्वारा आपत्तिजनक बताई जा चुकी थी । इसपर कमीशन ने अपनी राय यह दी कि ऐसे सम्बन्ध के कारण किसी प्रकार का पक्षपात तो साबित नहीं होता पर भारत-सचिव को चाहिए कि जहां तक हो सके ऐसी समालोचना या शिकायत के लिए कोई मौका ही न दें ।

इंडिया ऑफिस के दलाल को जिस उसूल पर दलाली दी जाती थी उसका कमीशन समर्थन न कर सका । उसकी सिफारिश थी कि कुछ समय बाद इस प्रश्न पर फिर से विचार किया जाय ।

बैंक ऑव् इंगलैंड के विषय में उसने ज्यादा जवाब इतना ही कहा कि हम लोगों के विचार में इंडिया ऑफिस और इस बैंक के सम्बन्ध को नई भित्ति पर रखने का समय आ गया है ।

कमीशन की रिपोर्ट सरकार के विचाराधीन ही थी कि अगस्त १९१४ में प्रथम महासमर छिड़ गया । अब यह निश्चय हुआ कि जब तक शांति स्थापित नहीं होती तब तक कार्रवाई मुल्तवी रहे ।

५

लेने के देन

महासमर के कारण भारतवर्ष को जो आर्थिक लाभ होना चाहिए था नहीं हुआ बल्कि गहरी हानि हुई। परतन्त्रता के फलस्वरूप उसे लेने के देने पड़ गए।

प्रारम्भ में हमारे व्यापार को धक्का सा लगा और काम-काज बहुत कम हो चला। एक्सचेंज में कमजोरी आने लगी जिसको रोकने के लिए सरकार ने भारत सचिव के नाम उलटी हुण्डी बेचना शुरू किया। लोग बैंकों से अपने अपने रुपए उठाने लगे। पहले दो महीनों में ही सेविंग्स बैंक डिपाजिट में छः करोड़ की कमी हो चली। सितम्बर से अक्टूबर १९१४ तक दो करोड़ की और कमी हुई। बाद में परिस्थिति सुधरी और डिपाजिट बढ़ने लगे। शुरुआत में घबराहट के मारे लोग नोट भी तेजी से भुनाने लगे। ३१ जुलाई १९१४ और ३१ मार्च १९१५ के बीच नोटों का चलण प्रायः दस करोड़ कम हो चला। पर इसके बाद अवस्था सुधरने पर नोटों का चलण फिर बढ़ने लगा और बढ़ता ही गया। जुलाई १९१४ के अन्त में सोने की माँग बढ़ चली और सरकार के हाथ से प्रायः १ ८०० ००० पौंड का सोना निकल गया। ५ अगस्त को सरकार ने सोना देना बन्द कर दिया। उसके बाद नोटों के बदले सिर्फ रुपए मिल सकते थे।

भारतवर्ष की करेंसी और एक्सचेंज पर महासमर का क्या असर हुआ उसे बताने से पहले यह बता देना आवश्यक है कि इंगलैंड में अब सोना और स्टर्लिंग दोनों दो चीज हो चले उनकी समानता जाती रही। हमारा जितना धन विलायत में जमा था और जिसे हम बराबर सोना मानते आते थे, अब स्टर्लिंग कागज रह गया।

इंगलैंड तथा अन्य मित्र-दलों को इस समय भारतवर्ष से बहुत कुछ माल मिल सकता था और वह मिलने भी लगा।

एक्सपोर्ट के मार्ग में कई कठिनाइयाँ थीं। जहाज कम मिलने व सामयिक प्रतिबन्ध के कारण जितना माल जा सकता था न जा पाता था। फिर भी एक्सपोर्ट में कमी नहीं हुई बल्कि १९१६-१७ में वृद्धि होने लगी। दूसरी ओर बाहर से कम माल आने लगा क्योंकि जर्मनी, आस्ट्रिया हंगरी जैसे देशों से तो कुछ आ ही नहीं सकता था और दूसरे देशों से भी आने में कई तरह की रुकावट थी। फिर भी दाम ऊँचे होने के कारण जो कुछ आया उसका दाम भारत-मन्त्री के पास जमा ही बना रहा। १९१४-१५ से १९१८-१९ तक उस माल का जितना इम्पोर्ट हुआ उससे हर साल प्राय ७६ करोड़ रुपया अधिक का एक्सपोर्ट हुआ। यह कोई असाधारण बात नहीं थी पर सोना चाँदी पहले की अपेक्षा बहुत कम आए इसलिए और देशों से हमारा पावना पहले से कहीं अधिक हो गया। लड़ाई से पहले पाँच वर्षों में प्रायः १८० करोड़ के सोना चाँदी आए थे। पर इन पाँच वर्षों में कुल ५८ करोड़ के आए। सालाना औसत प्राय ११ करोड़ बैठा।

भारतवर्ष से ही उस समय इराक, ईरान और पूर्व अफ्रीका में लड़ाई के खर्च के रुपए भेजे जाते थे। फौज का वेतन आदि चुकाने, लड़ाई के सामान खरीदने और शासन-सम्बन्धी सारा व्यय चुकाने के लिए इन रुपयों की जरूरत पड़ती थी। इन रुपयों के बदले भारत सरकार विलायत में ब्रिटिश सरकार से स्टर्लिंग पाती थी। १९१४ और १९१९ के बीच इस प्रकार के खर्च का जोड़ २४० ०००,००० पौंड हो चुका था और खर्च जारी ही था। भारतवर्ष में अमेरिका और ब्रिटिश उपनिवेशों की ओर से उन दिनों करोड़ों के माल खरीदे गए थे। इसके लिए भी खास व्यवस्था करनी पड़ी थी।

इन सब कारणों से यहाँ करेंसी की माँग बढ़ने लगी और टकसालों में रुपयों की ढलाई जोर शोर से होने लगी। अप्रैल १९०४ और मार्च १९१६ के बीच जब करेंसी की माँग साधारण थी, प्रायः १८०,००० ००० स्टैंडर्ड औंस चाँदी के रुपए ढले थे। पर अप्रैल १९१६ और मार्च १९१९ के बीच प्राय २००,००० ००० स्टैंडर्ड औंस चाँदी का इस काम में उपयोग हुआ।

३१ मार्च १९१४ को प्राय ६६ करोड के नोट चलन में थे। ३० नवम्बर १९१९ को यह तादाद प्राय १८० करोड हो चली थी। नोट बढते गए पर उनकी पुश्ती के लिए करेंसी रिजर्व में जो सोना चादी रख जाते थ उसका अनुपात घटता गया। महासमर से पहले कानून था कि रिजर्व में सिक्यूरिटीज या कागज अधिक से अधिक १४ करोड रुपए के रख जा सकते थ। धीरे धीरे यह हद बढाकर १२० करोड कर दी गई जिसमें २० करोड के कागज भारत सरकार के रख जा सकते थे बाकी ब्रिटिश सरकार के। ३० नवम्बर १९१९ को नोटो के चलन की पुश्ती इस प्रकार थी —

	करोड रुपए
चादी (रुपए)	४७
सोना	३३
कागज	१००
	१८०

नोटो के सम्बन्ध में दूसरी नई बात यह हुई कि १९१७ म ढाई रुपए के और १९१८ में एक रुपए के नोट जारी किए गए। ३१ माच १९१९ को ढाई रुपए के नोट प्राय १ करोड ८४ लाख के और एक रुपए के नोट प्राय १०॥ करोड के चलन में थ।

पहले सरकार की नीति यह रहती थी कि नोट भुनाने के लिए सव साधारण को हर तरह का सुविधा दी जाय। महासमर में यह नीति कायम न रह सकी। कागज की पुश्ती कागज से करके नोट बढ़ाए जा रहे थे इसलिए लोगो के मोनो में वह विश्वास न रह गया था जो पहले था। लोग रुपए मांगते थ। १९१६ १७ में प्राय ३८ करोड और १९१७ १८ में ७८ करोड रुपए चलन में गए। १ अप्रल १९१८ को रिजर्व में कुल १०॥ करोड रुपए रह गए थ —अर्थात् महासमर से पूर्व कम-से-कम जितना रिजर्व में रखना निरापद समझा जाता था उससे प्राय आठ करोड कम। माच और अप्रल १९१९ में महासमर-सम्बन्धी परिस्थिति कुछ चिन्ता जनक हो चली जिसका नतीजा यह हुआ कि लोग नोटों को धडल्ला भुनाने लग। जून के पहले सप्ताह में रुपए घुस प्राय चार करोड रह

गए थ। इस बीच में सरकार ने अमरिका से कुछ चांदी लेने की व्यवस्था कर ली थी और वह चांदी अब आने भी लगी। इसके फलस्वरूप परिस्थिति में सुधार होने लगा।

सरकार नोटों के बदले रुपए देने के लिए सब जगह बाध्य नहीं थी पर आम तौर से दिया करती थी। पर यह सुविधा अब न रही। रेल या स्टीमर-द्वारा सिक्के के आने पर प्रतिबन्ध लग गया। डाक-द्वारा भी अब कोई उन्हें कहीं न भेज सकता था। करेंसी आफिसों में सरकार नोटों के बदले रुपए देने को अब भी बाध्य थी। पर वहां भी अब यह नियम कर लिया गया कि एक आदमी को एक ही दिन इतने से ज्यादा रुपए न मिल सकेंगे। इन प्रतिबन्धों और रुकावटों के कारण चलन में रुपयों का स्थान नोट ग्रहण करते गए। पर नोटों पर ऐसी हालत में बट्टा लगना स्वाभाविक था। कुछ समय तक तो कहीं कहीं यह बट्टा १६ प्रतिशत तक रहा।

हम स्वाधीन होते और दूसरों के हाथ माल बेचते या उनके लिए कुछ खर्च करते तो हम उनसे बकाया स्टर्लिंग-जैसे कागजी रुपए में न कराके चांदी या सोने में कराते। थोड़ी देर के लिए यह मान लें कि हमारे लेनदार चांदी या सोना देने में असमर्थ होते और हम फिर भी उनके साथ कारोबार करना चाहते तो हम यह व्यवस्था कर सकते थे कि उन्हें कुछ समय के लिए अपना रुपया कर्ज दें। पर हम थे पराधीन और इस पराधीनता के कारण हम दाम या भुगतान अपनी इच्छा या सुविधा नहीं बल्कि इंगलैण्ड की इच्छा और सुविधा के अनुसार लेने को विवश थे। वर्षों से यहां हमने जो सोना जमा कर रखा था वह तो कागज हो ही गया अब इंगलैण्ड हम से जो कुछ लेने लगा उसका दाम भी कागज में ही चुकाने लगा। करेंसी रिजर्व की जो थोड़ा सा सोना थोड़ा में था उसमें स्टर्लिंग के कागज रख दिए जाने और उनके बदले इधर नोट निकाल दिए जाने। दोनों ओर पतंगबाजी थी।

महासमर छिड़ते ही प्रायः प्रत्येक देश ने सोने के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा दिया। सोना बाहर जा सकता था तो उसी हालत में जब बिना सोना दिए किसी देश का काम चलनेवाला न था। १९१७-१८ में

भारतवर्ष में जापान और अमेरिका से कुछ सोना इस कारण आया था कि उन्हें यहां माल खरीदना था और उस समय भारत सचिव से हुंडी मिलने में कठिनाई थी। जब सोना दुलभ हो चला तब चांदी की मांग बढ़ी। पर चांदी का उत्पादन १९१४ से ही कम होने लगा था। १९१० से १९१३ तक तमाम दुनिया की खानों से २२८,५५२००० औंस चांदी निकली थी। १९१४ से १९१७ तक कुल चांदी १७८०७५००० औंस निकली। इस कमी का खास कारण यह था कि मेक्सिको में राजनैतिक अशांति के कारण चांदी का उत्पादन बहुत घट गया। इधर ब्रिटिश साम्राज्य और चीन आदि देशों की ओर से मांग कहीं-से कहीं बढ़ गई। इसका नतीजा यह हुआ कि चांदी महंगी हो गई। १९१५ में जो दाम २७। पेंस था वह अगस्त १९२७ में ४३ पेंस और एक ही महीना बाद ५५ पेंस हो चला था।

अमेरिका, कनाडा और ग्रेट ब्रिटेन ने चांदी के दाम की घटाबढ़ी को रोकने की कुछ खास व्यवस्था की जिससे चांदी का दाम कुछ समय तक प्रति औंस प्राय एक डालर बना रहा। मई १९१८ और अप्रैल १९१९ के बीच लन्दन में दाम ४७॥। और ५० पेंस के बीच रहा। मई १९१९ में अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन ने चांदी के बाजार से अपना अपना नियंत्रण उठा लिया जिसका नतीजा यह हुआ कि लन्दन में दाम फौरन ५८ पेंस हो गया। उसके बाद भी दाम बढ़ता ही गया और १७ दिसम्बर को ७८ पेंस तक पहुंच गया था।

चौथे अध्याय में कहा गया है कि जब चांदी का दाम लन्दन बाजार में ७४ पेंस होता तब एक रुपए की चांदी की कीमत ६ पेंस से कुछ ऊपर होती। इसी प्रकार जब चांदी का दाम ४३ पेंस हो गया तब रुपए की चांदी की कीमत १६ पेंस के पास पहुंच गई अर्थात् चांदी इतनी महंगी होते ही रुपए की असली कीमत उसकी नकली कीमत के पास पहुंच गई। और जब चांदी और भी महंगी हुई तब १६ पेंस में रुपया देना सरकार के लिए असम्भव हो गया।

दबाव के लिए सरकार ने एक्सचेंज को ऊंचा करना शुरू कर दिया।

२८ अगस्त १९१७ को टी० टी०[1] का दाम १६¼ पेंस से १७ पेंस कर दिया गया। उसके कुछ ही दिन बाद यह विज्ञप्ति निकली कि भारत सरकार के नाम हुंडी की दर अब चांदी के दाम पर निर्भर करेगी। १२ अप्रैल १९१८ को दर १८ पेंस कर दी गई और १३ मई १९१९ तक यही दर रही। अमरिका ने चांदी के बाजार पर से नियंत्रण उठा लिया, इस कारण चांदी और भी महंगी हो चली और रुपए की एक्सचेंज-दर अब २० पेंस कर दी गई। उसके बाद ज्यों ज्यों चांदी तेज होती गई यह दर ऊंची होती गई। इसके सोपान ये थे —

१२ अगस्त १९१९	२२ पेंस
१५ सितम्बर	२४ पेंस
२२ नवम्बर	२६ पेंस
१२ दिसम्बर	२८ पेंस

३ सितम्बर १९१७ को चांदी का व्यापारियों-द्वारा इम्पोर्ट बन्द कर दिया गया। एक्सपोर्ट पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया—बिना सरकार से लाइसेंस प्राप्त किए कोई सोना या चांदी के सिक्के इस देश से बाहर नहीं भेज सकता था।

इम्पोर्ट रोका गया था इस उद्देश से कि जो चांदी संसार में उपलब्ध थी उसका कोई हिस्सा भारतवर्ष के व्यापारियों के हाथ लगने न पावे। एक्सपोर्ट इसलिए रोका गया था कि लोग सिक्कों को गला कर या यों ही बाहर भेजना न शुरू कर दें। २९ जून १९१७ के बाद तो चांदी या सोने के सिक्कों का और किसी काममें ले आना भी जुर्म करार दे दिया गया।

चांदी की कमी के कारण सरकार अपना सोने का स्टाक भी बढ़ाने लगी। २९ जून १९१७ के बाद जो सोना विदेश से आता उसे [illegible] को सरकार के हाथ बेच देना पड़ता। अगस्त १९१८ में रायल मिन्ट अर्थात् ब्रिटिश टकसाल की एक शाखा बम्बई में खोली गई और वहां सॉवरेन ढाले जाने लगे। इससे पहले कुछ ऐसी मोहरें यहां की टकसालों में ढाली जा चुकी थीं जो प्रायः हर बात में सॉवरेन के समान थीं। परन्तु

---

[1] Telegraphic Transfers—तार-द्वारा की जानेवाली हुंडी

१६१९ में रायल मिण्ट की यह शाखा उठा दी गई।

ऊपर कहा जा चुका है कि महासमर छिड़ते ही सरकार ने सावरेन देना बन्द कर दिया था। बाजार में सावरेन की कीमत बढ़ चली और १५) से ऊपर रहने लगी। कानूनन सावरेन की कीमत अब भी वही १५) थी और सरकार उसके बदले १५) देने को ही बाध्य थी। सावरेन ऐसी हालत में करेन्सी के काम न आ सकते थे। फिर भी रुपया की इतनी कमी हो रही थी कि दो बार सरकार को इस देश के कुछ हिस्सों में किसानों से माल खरीदने के लिए कई करोड़ के सोने के सिक्के (सॉवरेन और देशी मोहरें) देने पड़े।

शान्ति स्थापित हो जाने पर अमेरिका ने ६ जून १६१६ से सोने के एक्सपोर्ट की स्वतन्त्रता दे दी। दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया का सोना भी बाहर जाने के लिए स्वतन्त्र हो गया। इसलिए इस देश में सोने की आमद बढ़ चली। भारतवर्ष लन्दन में और अन्यत्र भी सोना खरीदने लगा। १५ सितम्बर १६१७ के बाद भारत सरकार इम्पोर्टर को सोने का दाम इस हिसाब से देने लगी कि हुंडी की दर को घटा बढ़ी के अनुसार सोने की जो कीमत हो वह उसे मिल जाया करे।

अगस्त १९१६ के अन्त में भारत सरकार ने यह घोषित किया कि हर पखवारे उसकी ओर से सोने की बिक्री की जायगी। इस बिक्री का नतीजा यह हुआ कि बाजार में सोने का दाम गिर पड़ा। १५ अगस्त १६१६ को दाम था ३२ १२ रुपए तोला। २२ सितम्बर को यह गिर कर २७ रुपए रह गया था। फिर दाम में कुछ तेजी आई और अक्तूबर के अन्त तक वह २६ १२ रुपए तोला हो चला। फिर कुछ ही दिन बाद वह गिर कर २८ ५ रुपए तोला रह गया। जब दाम ३२ १२ रुपए तोला था तब एक सॉवरेन की कीमत २० ६ रुपए थी। जब दाम २८ ५ रुपए तोला रह गया तो सॉवरेन की कीमत थी १७ ११ रुपए।

चाँदी-सम्बन्धी परिस्थिति को काबू में लाने के लिए सरकार ने हर तरह की तदबीर की, पर चाँदी की कमी बनी ही रही और अन्त में उसे ब्रिटिश सरकार की मार्फत अमेरिका का दरवाजा खटखटाना पड़ा। अमेरिका के पास रिजर्व में बहुत कुछ चाँदी पड़ी हुई थी और उसने

उसका एक हिस्सा भारत-सरकार को देना स्वीकार कर लिया। २३ अगस्त १९१८ को वहा इसके लिए पिटमन एक्ट नामक विधान बना जिसका आशय था कि वहा की सरकार दूसरी सरकारों को इस रिजर्व में से ३५० ००० ००० चान्दी के डालर तक चादी बेच सकती है। भारत को इसमें से २००,००० ००० औंस चान्दी मिली जिसका दाम प्रति औंस (खालिस चादी) १०१' सेंट चुकाना पड़ा। यह चान्दी मिल जाने से भारत-सरकार का बहुत बड़ा सकट टल गया। समय-समय पर वह बाजार में भी चादी खरीदती रही। सब मिला कर उसने ५३८ ००५ ००० औंस (स्टडड) चान्दी खरीदी।

३० मई १९१९ को एक करसी कमेटी की नियुक्ति हुई जिसके अध्यक्ष मि० बबिंगटन स्मिथ थे और जिसके एकमात्र भारतवासी मेम्बर थे मि० दादीबा मरवान जी दलाल। कमेटी को यह देखना था कि भारतीय प्रणाली पर महासमर का क्या असर हुआ है—उस प्रणाली में कौन से हेरफेर की जरूरत है और किस प्रकार यहा के गोल्ड एक्सचेंज स्टडर्ड में स्थिरत्व या स्थायित्व लाया जा सकता है। उस समय एक्सचेंज की दर २० पेंस थी।

२२ दिसम्बर १९१९ को कमेटी की रिपोर्ट तयार हुई और भारत सचिव के पास भजी गई। मि० दलाल कमेटी की रिपोर्ट से सहमत न हो सके और उन्होंने अपने विचार अलग ही एक नोट में प्रकट किए।

कमेटी की खास सिफारिश यह हुई कि रुपए की एक्सचेंज-दर मानें में बाध दी जाय और वह दर २४ पेंस (सोना) हो। इस हिसाब से सॉवरेन की कीमत १५) के बजाय १०) होती। १८७३ से पहले एक्सचेंज का जो रेट था उसे फिर से ले आने के लिए ऊंचे एक्सचेंज के पक्षपातियों की दृष्टि में यह अवसर अनुपम था—इस हाथ से जाने देना परले सिरे की मूर्खता होती।

मि० दलाल ने इस धींगाधींगी का जोरों से विरोध किया। उन्होंने अकाट्य युक्तियों से यह प्रमाणित कर दिया कि एक्सचेंज की दर (१६ पेंस) में किसी प्रकार का परिवर्तन न होना चाहिए था।

कमेटी ने जिस दर की सिफारिश की थी वह थी २४ पेंस (सोना)।

उस समय इग्लैंड में सोने का स्टैंडर्ड या मान नहीं था—नोटों के बदले सोना मिलना बन्द हो गया था। सोना और स्टर्लिंग दोनों दो चीजें हो रही थीं। एक सौ औंस खालिस सोना हो तो उसके ४२५ सावरेन ढाले जा सकते हैं—शायद यह कहना ठीक होगा कि ढाले जा सकते थे। पर १७ दिसम्बर १९१९ को जो भाव था उसके अनुसार एक सौ औंस खालिस सोने का दाम प्रायः ५४४ पौंड स्टर्लिंग (कागजी) होता था। एक पौंड स्टर्लिंग (कागजी) अब तक सावरेन के बराबर न होकर ४२५/५४४ अर्थात ७८ सावरेन (सोना) के बराबर था। इसीको दूसरी तरह यों कह सकते हैं कि एक सावरेन (सोना) अब ५४४/४२५ अर्थात १.२८ पौंड स्टर्लिंग (कागजी) के बराबर था। कमेटी ने रुपए का स्टर्लिंग से न बांधकर सोने से बांधने की सिफारिश की। २४ पेंस (सोना) का अर्थ २४ पेंस स्टर्लिंग नहीं बल्कि इससे कहीं अधिक था।

एक्सचेंज को उठाने के पक्ष में दलील यह दी गई थी और दी जा रही थी कि चांदी का दाम ४३ पेंस से ऊपर हो जाने पर रुपए का प्रतीक मुद्रा रहना असम्भव था इसलिए रुपए को चलन में कायम रखने के लिए उसकी एक्सचेंज दर को काफी ऊंचा रखने की जरूरत थी। भविष्य के सम्बन्ध में भी कमेटी की धारणा थी कि चीजों के दाम शीघ्र गिरनेवाले न थे—और चांदी का दाम इतना ऊंचा रहनेवाला था कि रुपए की कीमत २ शिलिंग अर्थात २४ पेंस (सोने में) से कम रखने से उसके चलन से निकल जाने का अर्थात धातु के रूप में बिक जाने का डर था। लार्ड कीन्स आर्थिक विषयों में बड़े दूरदर्शी माने जाते हैं। उन्होंने भी दो शिलिंग जैसी ऊंची दर का समर्थन इस आधार पर किया कि संसार में चीजों के दामों के गिरने की कोई सम्भावना न थी—बल्कि सम्भावना यह थी कि दाम और भी ऊपर चढ़ेंगे। कहा गया कि इस महंगी को ध्यान में रखते हुए यह और भी जरूरी था कि रुपए की एक्सचेंज-दर काफी ऊंची हो—जिससे भारत वर्ष में महंगी की भीषणता कुछ हद तक कम हो सके।

वास्तव में—जैसा कि मि० दलाल ने अपने वक्तव्य में कहा था—चांदी की तेजी ही एक्सचेंज की दर में वृद्धि का एकमात्र कारण नहीं हो सकती थी क्योंकि अधिकारियों की मंशा थी कि चांदी सस्ती हो

जाय तो भी एक्सचेंज १६ पेंस से काफी ऊंचा रखा जाय।

पर जो दलील दी गई थी उसका मि० टलान के शब्दों में जवाब यह था—

"महासमर की समाप्ति हो जाने पर भी चांदी के एक्सपोर्ट पर प्रतिबंध बना रहा। अगर यह प्रतिबंध हटा लिया गया होता तो चांदी में इतनी तेजी न आती। भारतवर्ष आसानी से दूसरे देशों के हाथ अपनी चांदी का एक हिस्सा बेच सकता था। इसका चांदी के दामों पर अच्छा असर पड़ता। चांदी का एक्सपोर्ट रुक जाने से और जो चांदी बच सकती थी उसके चांदी का खरीदार बन जाने से ही इस बाजार में आग लग गई।

अगर यह मान भी लिया जाय कि चांदी का एक्सपोर्ट होने लायक न था तो भी लड़ाई के समय उसका दाम बढ़ने के कारण एक्सचेंज को उठाना मुनासिब न था। भारत सचिव को चाहिए था कि जितने रुपए की उन्हें जरूरत होती उतने को भारत-सरकार के नाम हुंडी करके इस काम से हाथ खींच लेते—व्यापारी अपना देना चांदी न भेजकर, और जिस तरह चुका सकते चुकाते।

जब तक संसार भर में सोने के एक्सपोर्ट पर प्रतिबंध था तब तक थोड़े समय के लिए एक्सचेंज में कुछ वृद्धि शायद अनिवार्य-सी थी, पर जब अमेरिका ने ९ जून १९१९ से प्रतिबंध हटा लिया और दक्षिण अफ्रीका का सोना भी १८ जुलाई १९१९ से लन्दन के बाजार में बेरोकटोक बिकने लगा तब कोई भी कारण न हो सकता था कि एक्सचेंज की दर को २० पेंस से २८ पेंस कर दिया जाय।

'सोने और रुपए के बीच की दर जो कायम थी वह महासमर के समय उठा दी गई। पर महासमर के बाद जो कुछ किया गया वह उससे भी अनुचित था। शान्ति स्थापित हो जाने पर परिस्थिति बदल गई। लड़ाई के कारण बड़े पैमाने पर होनेवाले सरकारी खर्च की अब कोई जरूरत न रह गई। व्यापार के लिए रुपए की मांग अवश्य थी, पर यह मांग पूरी करने से कहीं अधिक आवश्यक यह था कि यहां की जनता के मुद्रा-सम्बन्धी अधिकार की रक्षा की जाय। मूल्य का जो मान या स्टैंडर्ड कर लिया गया था उसे अविचल रहने दिया जाय। हर

हालत में—पर खास कर शान्ति स्थापित हो जाने पर—चाहिए यह कि व्यापार उस मान या स्टण्डर्ड के पीछे चले—न कि यह कि मान या स्टण्डर्ड ही व्यापार का अनुवर्ती बन जाय। अगर उस स्टण्डर्ड को बदले बिना व्यापार की माग पूरी नहीं की जा सकती थी तो 'मुनासिब था कि वह माग पूरी न की जाय यह हर्गिज मुनासिब न था कि माग तो पूरी की जाय और स्टण्डर्ड को उठा दिया जाय।"

रुपया स्वयं हमारी मुद्रा प्रणाली में मूल्य का कोई मान न था। यह मान या स्टण्डर्ड १६ पेंस अर्थात ७.५३३४४ ग्रेन सोना था। रुपया कागजी नोट की तरह उसका प्रतिनिधि मात्र था। अगर चादी महगी हो गई थी तो सरकार को चाहिए था कि मान या माप दण्ड को ज्यों का-त्यों[1] रखते हुए रुपए में चादी का परिमाण कम कर देती या नए रुपए ढालती

---

[1]मान या मापदण्ड के लिए जिस धातु का उपयोग होता था वह महगी हो रही थी, इसलिए मान या मापदण्ड ही बदल दिया जाय—यह प्रस्ताव कितना अनुचित था यह नीचे के उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। नापने के गज को लीजिए। यह १६ गिरह या तीन फुट का होता है। मान लीजिए कि कहीं गज नापने के लिए रेशम का फीता काम में लाया जाता है (सोलह पेंस के लिए एक रुपए की तरह)। अचानक रेशम महगा हो गया और गज के लिए उसका उपयोग असम्भव है। ऐसी दशा में वहा वाले क्या करेंगे? अवश्य ही रेशम की जगह वह और किसी वस्तु का उपयोग करने लगेंगे जो रेशम से सस्ती हो। थोडी देर के लिए मान लीजिए कि इस विषय का नियन्त्रण सरकार करती है और उसने रेशम की जगह सूत के व्यवहार की आज्ञा न देकर यह आज्ञा दे दी कि १६ अगुल के बजाय अब २४ अगुल का एक गज समझा जायगा। ऐसी आज्ञा या विधान का एक फल यह होगा कि जो किसीको एक गज देने के लिए बाध्य है उसे १६ की जगह अब २४ अंगुल नाप कर देना होगा। एक्सचेंज रेट बढ़ा देने का नतीजा भी ठीक ऐसा ही हुआ। पहले जो किसीको १) देने को बाध्य था उसे अब ७.५३३४४ ग्रेन की जगह ११.३००१६ ग्रेन सोना (या इसी हिसाब से अपने लेन